श्रीः ।

शृंगारादिनवरसनिरूपणम् ।

जिसमें शृंगारादिनवरस अलंकार वर्णनं ।

"ग्राम जालिया-परगना मसूदा जिला अजमेर" इत्या-

ख्ये निवसता पण्डितहरदेवशर्मणा संग्रहीतम्

तत्कृतयैव भाषाटीकया समेतं च ।

तच्च

मुम्बय्यां

खेमराजश्रीकृष्णदासश्रेष्ठिना

स्वकीये "श्रीवेंकटेश्वर" मुद्रणालये

मुद्रयित्वा प्रकाशितम् ।

संवद् १९५१ शके १८१६

श्रीः ।

श्रृंगारादिनवरसनिरूपणम् ।

जिसमें श्रृंगारादिनवरस अलंकार वर्णनं ।

"ग्राम जालिया-परगना मसूदा जिला अजमेर" इत्या-
ख्ये निवसता पण्डितहरदेवशर्मणा संग्रहीतम्

तत्कृतयैव भाषाटीकया समेतं च ।

तत्र

मुम्बय्यां

खेमराजश्रीकृष्णदासश्रेष्ठिना

स्वकीये "श्रीवेंकटेश्वर" मुद्रणालये

मुद्रयित्वा प्रकाशितम् ।

संवद् १९५१ शके १८१६

श्रीः ।

विज्ञापनम् ।

यद्यपि आजकल सब प्रकारके ग्रंथोंका प्रचार अधिक होरहाहै । तथापि अलंकार ग्रंथोंका प्रचार थोडाहै । और हमलोग नित्य जो साधारण वार्त्तालाप करते हैं । उसमेंभी अवश्य अलंकारोंका वर्त्ताव करना चाहिये । क्योंकि जैसे विनाअलंकारोंके शरीरशोभा नहीं देता । वैसेही विनाअलंकारोंके किसी वार्त्ताका कोई प्रसंगभी शोभा नहीं देता ॥ उन अलंकारोंमें प्रधानअंग शृंगारादि नवरस होनेसे नवरसोंकी तो अत्यंतावश्यकता है । इसीलिये मैंने यह शृंगारादि-नवरसनिरूपण नामकी पुस्तक पुराने ग्रंथोंसे संग्रहकीहै ॥ और इसकी प्रत्येक श्लोकके साथ २ यथामति भाषाटीकाभी कीहै ॥ इसमें शृंगार १ वीर २ करुणा ३ अद्भुत ४ हास्य ५ भयानक ६ बीभत्स ७ और रौद्र ८ ये आठ रस तो सूक्ष्मतासे दर्शाये हैं । और शान्तरस कुछ विस्तारसे दर्शायाहै ॥ क्योंकि शान्तरस सब रसोंमें श्रेष्ठहै ॥ और उसमें वैराग्य–विषयोपहास–अनित्यतानिरूपण–तृष्णानिन्दा–कालचरित–पश्चात्ताप विचारआदि इसलिये संग्रह किये गये हैं । कि जिसमें पाठकोंको संसारमें असत्यता प्रतीति होकर भगवद्भक्तिमें प्रेम बढ़े ॥ यदि थोडेसेभी सज्जन इस पुस्तकको पढकर नवरसोंका वर्त्ताव करने लगेंगे । और संसारज सुखको अनित्यमान भगवच्चरणोंमें प्रीति लगावेंगे । तो मैं अपने परिश्रमको सफल समझूंगा ॥ और यदि मूलमें वा टीकामें भ्रान्तिसे, वा अल्पज्ञतासे, वा असावधानीसे, वा छापेके दोषसे कहीं कुछ भूल चूक रहगईहो । तो उसे विद्वज्जन कृपाकर सुधारलेवेंगे । और मुझे अल्पज्ञ जान क्षमा करेंगे ॥

खेमराज श्रीकृष्णदास
श्रीवेङ्कटेश्वरछापाखाना
बम्बई.

पं० हरदेव
ग्राम–जालिया, परगना–मसूदा–जिला–
अजमेर. हैदराबाद दक्षिण

जाहिरात.

वेदान्तग्रंथाः।

नाम.	की. रु. आ.	ट. म. रु. आ.
१ शारीरक (शांकरभाष्य) रत्नप्रभाटीका व्यासाधिकरणमाला और भक्तिसूत्र सभाष्य अक्षर बड़ा	१०—०	१—०
२ ब्रह्मसूत्र (शारीरक) भाषाटीका	१—८	०—३
३ वेदांतसार संस्कृतमूल और संस्कृतटीका तथा भाषाटीकासहित	०—१२	०—२
४ गीता चिद्घनानंदस्वामिकृत गूढ़ार्थदीपिका मूल अन्वय पदच्छेदके सहित भाषाटीका	८—०	१—०
५ गीता आनंदगिरिकृतभाषाटीका सहित	३—०	०—८
६ श्रीमद्भगवद्गीता सान्वय ब्रजभाषा दोहासहित	१—४	०—३
७ गीता अमृततरंगिणी भाषाटीका (रघुनाथप्रसादकृत)	१—४	०—३
८ गीतामृततरंगिणी भाषाटीका पाकिटबुक	०—१२	०—१॥
९ पंचदशीसटीक	२—८	०—४
१० पंचदशी पं० मिहिरचंदकृत भाषाटीका सहित	४—०	०—८
११ अध्यात्मप्रदीपिका	०—४	०—॥
१२ सिद्धांतचंद्रिका सटीक वेदांत	०—८	०—१
१३ प्रश्नोत्तरप्रकाश	०—४	०—॥
१४ हरिमीडेस्तोत्रसटीक	०—१४	०—२
१५ द्वादशमहावाक्यविवरण	०—४	०—॥
१६ गोरख पद्धति भाषाटीका सहित	०—१२	०—१
१७ हठयोगप्रदीपिकाभाषाटीका सह	१—४	—०२
१८ शिवस्वरोदय भाषाटीका	०—१०	०—२
१९ शिवसंहिता भाषाटीका सह (योगशास्त्र)	१—०	०—२
२० श्रीरामगीता भाषाटीका पदप्रकाशिका अनुवाद समुच्चय और विषमपदीके सहित	०—८	०—१

जाहिरात.

नाम.	कीं. रु. आ.	ट.म. रु. आ.
२१ अपरोक्षानुभूति संस्कृतटीका भाषाटीका सहित	०—१०	०—१
२२ आत्मबोध भाषाटीका	०—४	०—॥
२३ तत्त्वबोध भाषाटीका	०—२॥	०—॥
२४ वेदांतग्रंथपंचकम् (वाक्यप्रदीपः वाक्यसुधारसः हस्तामलकः निर्वाणपंचकं मनीषापंचकं) स०	०—८	०—१
२५ वेदस्तुति भाषाटीका सह....	०—८	०—१
२६ रामगीता मूल....	०—२	०—॥
२७ श्रीमद्भगवद्गीतापंचरत्नअक्षरमोटागुटकारेशमी	१—४	०—४
२८ " पंचरत्न अक्षरबडा खुलापत्रा छोटीसंची	१—८	०—३
२९ " पंचरत्न अक्षरबडा लंबीसंची खुला	१—०	०—३
३० गीता श्रीधरीटीका सहित	१—४	०—३
३१ गीता बडे अक्षरकी १६ पेजी गुटका	१—०	०—२
३२ गीता बडेअक्षरकी खुली १२ पेजी	०—१२	०—२
३३ गीता गुटका विष्णुसहस्रनाम सहित....	०—८	०—१
३४ गीता पंचरत्न और एकादशरत्न	०—१२	०—२
३५ " पंचरत्न द्वादशरत्न	०—१०	०-१॥
३६ गीतापंचरत्न नवरत्न पाकिट बुक	०—७	०—१
३७ गीता गुटका पाकिट बुक....	०—६	०—॥
३८ पाण्डवगीता भाषाटीका सह	०—३	०—॥
३९ पांडवगीतादि ४ रत्न अक्षर बडा	०—३	०—॥
४० शिवगीता भाषाटीकासहित	०—१२	०—२
४१ गणेशगीता भाषाटीका सहित	०—६	०—१
४२ आत्मबोध, तत्त्वबोध, वेदस्तुति भाषा	०—४	०—॥
४३ शांडिल्यसूत्र सभाष्य	०—८	०—१
४४ नारदगीता	०—१	०—॥

श्रीः ।

शृंगारादिनवरसनिरूपणम् ।

भाषाटीकासमेतम् ।

श्लोकाः ।

दिक्कालाद्यनवच्छिन्नाऽनन्तचिन्मात्रमूर्त्तये ॥
स्वानुभूत्येकमानाय नमः शांताय तेजसे॥ १ ॥

टीका–दिशा और काल जिसकी मूर्त्तिका संकोच नहीं कर सकते । और जो अंत रहित और चैतन्य रूपहै । और जो अपनेही अनुभवसे जानाजाताहै । ऐसे शांत और तेजोरूप ब्रह्मको नमस्कार है ॥ १ ॥

तत्रादौ शृंगाररसनिर्देशः ॥ १ ॥

भ्रूचातुर्याकुञ्चिताक्षाः कटाक्षाःस्निग्धा वाचो लज्जिताश्चैव हासाः ॥ लीलामन्दं प्रस्थितं च स्थितं च स्त्रीणामेतद्भूषणं चायुधं च ॥ १ ॥

टीका–भौंह फेरनेकी चतुराई,अर्द्ध नेत्रसे कटाक्ष चलाना, मीठी मीठी बातें बोलना–लज्जित होकर मंद मंद हँसना–लीलासे मंद मंद चलना–और घूमकर खडे होजाना–स्त्रियोंके ये सहज भूषण और शस्त्रहैं । अर्थात् इनहीं शस्त्रोंसे पुरुषोंको मारतीं हैं ॥ १ ॥

वीररसनिर्देशः ॥ २ ॥

हतेऽभिमन्यौ क्रुद्धेन तत्र पार्थेन संयुगे ॥
अक्षौहिणी सप्त हत्वा हतो राजा जयद्रथः ॥१॥

टीका–जब कि, लडाईमें अभिमन्यु मारागया । तो अर्जुनने क्रोध करके सात अक्षौहिणी सेनाको मारकर राजा जयद्रथको जा पछाडा ॥ १ ॥

करुणारसनिर्देशः ॥ ३ ॥

साक्षान्मघवतः पौत्रः पुत्रो गांडीवधन्वनः ॥
स्वस्रीयो वासुदेवस्य तं गृध्राः पर्युपासते ॥१॥

टीका–साक्षात् इंद्रका पोता अर्जुनका पुत्र और श्रीकृष्णका भगिनीपुत्रहै ॥ हाय! हाय! आज उसी अभिमन्युका मांस गीद नोंच नोंच कर खारहेहैं ॥ १ ॥

अद्भुतरसनिर्देशः ॥ ४ ॥

अंबुजमंबुनि जातं नहि दृष्टं जातमम्बुजादम्बु ॥
अधुना तद्विपरीतं चरणसरोजाद्विनिर्गता गंगा ॥१॥

टीका–जलसे कमल होताहै । कमलसे जल नहीं होता । अभी तो इसके विपरीत दिखाई देताहै। कि चरण कमलसे गंगा निकलतीहै॥ १॥

हास्यरसनिर्देशः ॥ ५ ॥

वाचयति नान्यलिखितं लिखितमनेनाऽपि वाचयति नान्यः ॥ अयमपरोऽस्य विशेषः स्वयमपि लिखितं स्वयं न वाचयति ॥ १ ॥

टी०—यह दूसरोंका लिखा हुआ नहीं पढ़ सकता । इसकाभी लिखाहुआ दूसरे नहीं पढसकते । एक इसमें अधिकाई है । कि यह अपना लिखाहुआही आप नहीं पढ़सकता ॥ १ ॥

भयानकरसनिर्देशः ॥ ६ ॥

इदं मघोनः कुलिशं धारासंनिहितानलम् ॥
स्मरणं यस्य दैत्यस्त्रीगर्भपाताय केवलम् ॥ १ ॥

टी०—यह इंद्रका धनुष अग्निके समान धारवालाहै । इसके स्मरण मात्रहीसे दैत्योंकी स्त्रियोंका गर्भ गिर पड़ताहै ॥ १ ॥

बीभत्सरसनिर्देशः ॥ ७ ॥

प्रस्वेदमलदिग्धेन वहता मूत्रशोणितम् ॥
व्रणेन विकृतेनेदं सर्वमन्धीकृतं जगत् ॥ १ ॥

टी०—पसीना और मल जिसमें लिप्त हो रहाहै । रात और दिन जिसमेंसे मूत्र और रजरूप रक्त बहताही रहताहै ॥ ऐसे भयानक घावने सब जगत्को अंधा कर रक्खा है ॥ १ ॥

रौद्ररसनिर्देशः ॥ ८ ॥

स्पृष्टा येन शिरोरुहे नृपशुना पांचालराजात्मजा
येनास्याः परिधानमप्यपहृतं राज्ञां कुरूणां पुरः ॥
यस्योरःस्थलशोणितासवमहं पातुं प्रतिज्ञातवान्
सोऽयं मद्भुजपंजरे निपतितः संरक्ष्यतां कौरवाः ॥ १ ॥

टी०—जिस नर पशुने कुरुवंशी राजाओंके साम्हने द्रौपदीको मस्तकके बाल पकडकर खींचीथी । जिसने द्रौपदीका चीर हरण कि-

याथा । जिसके उर:स्थलके रक्तरूप आसवके पान करनेकेलियें मैनें प्रतिज्ञा कीथी ॥ आज वही मेरी भुजारूप पिंजडेमें गठाहुआहै। यदि कौरव रक्षा कर सकतेहैं । तो करें ॥ १ ॥

शान्तरसनिर्देशः ॥ ९ ॥

वैराग्यम्—धनं तावल्लब्धं कथमपि तथाऽप्यस्य नियतं
विनाशेऽलाभे वा तव सति वियोगोऽप्युभयथा॥
अनुत्पादःश्रेयान् किमु कथय तस्याऽथ विलयो
विनाशो लब्धस्य व्यथयतितरां न त्वनुदयः॥१॥

टी०—यदि किसी प्रकारसे कुछ धन मिलभीगया । तो उसके नाश होनेपर उसका वियोग होवेहीगा ॥ और जो नहीं मिला तो भी वियोगहीहै । अर्थात् दोनों प्रकारसे वियोगहीहै । परन्तु यदि कुछ द्रव्य मिला । और उस द्रव्यसे कोईभी कल्याणकारक कार्य न बनपड़ा । और वह नाश होगया । तो इस बातसे जितना दुःख होताहै । उतना द्रव्य न मिलनेसे नहीं होता ॥ १ ॥

तडिन्मालालोलं प्रतिदिवसदत्तान्धतमसं भवे
सौख्यं हित्वा शमसुखमुपादेयमनघम् ॥ इति
व्यक्तोद्गारं चटुलवचसः शून्यमनसो वयं
वीतव्रीडाः शुक इव पठामः परममी ॥ २ ॥

टी०—बिजलीकी मालाके समान चपल और प्रतिदिन अंधतम नरकका दाता ऐसे संसारके सुखको छोडकर अभय जो शम सुखहै । उसे संपादन करना चाहिये । इस महात्माओंकी वाणीको हमलोग लज्जा छोडकर प्रतिदिन तोतेकी भाँति पढें ॥ २ ॥

परेषां चेतांसि प्रतिदिवसमाराध्य बहु हा प्रसादं

किं नेतुं विशसि हृदयक्लेशकलितम् ॥ प्रसन्ने त्वय्यन्तःस्वयमुदितचिन्तामणिगुणेविमुक्तःसंकल्पः किमभिलषितं पुष्यति न ते ॥ ३ ॥

टी०–हेचित्त ! तू क्लेशसे मलीन होता हुआ पराये चित्तमें क्या प्रसाद लेनेकेलिये प्रवेश करताहै ? जब तू सब संकल्प [तृष्णा] छोडकर अपनेहीमें प्रसन्न होता हुआ अपनेहीमें चिन्तामणिगुण प्रगट करेगा । अर्थात् संतोषादि गुण ग्रहण करेगा । तो क्या तेरी अभिलाषा पूरी न होगी ? ॥ ३ ॥

यदेतत्स्वाच्छन्द्यं विहरणमकार्पण्यमशनं सहार्यैः संवासःश्रुतमुपशमैकव्रतफलम् ॥ मनो मन्दस्पंदं बहिरपि चिरस्याऽपि विमृशन्न जाने कस्यैषा परिणतिरुदारस्य तपसः ॥ ४ ॥

टी०–स्वाधीन विचरना–विनायाचे भोजन करना सहाय्यता करनेवाले श्रेष्ठ पुरुषोंके साथ रहना । ऐसा शास्त्र कहना वा सुनना–कि जिसका उपशमरूपी व्रतही फलहो । और यदि मन बाह्य पदार्थोंमें हो । तो विचार करताहुआ धीरे २ गमन करे । यह सब प्राप्त होना । हम नहीं जानते । कि किस प्राचीन बडेभारी तपका फलहै ॥ ४ ॥

दैन्यं क्वचित्क्वचन मन्मथजा विकाराः कुत्राऽप्यनेकविधबंधुजनप्रपंचः ॥ क्वाऽपि प्रभुत्वधनकल्पितमीश्वरत्वमित्येकवैकृतमिदं जगदाविभाति५

टी०–कहांही दीनता कहांही कामके विकार कहीं अनेक भाई

बंधुओंके प्रपंच—कहीं प्रभुता धनसे कल्पित बडापन— ऐसे एकसे एक विरुद्ध इस संसारमें भान होतेहैं ॥ ५ ॥

व्याघ्रीव तिष्ठति जरा परितर्जयन्ती रोगाश्च शत्रव इव प्रहरन्ति देहम् ॥ आयुःपरिस्रवति भिन्नघटादिवांभो लोकस्तथाऽप्यहितमाचरतीति चित्रम् ॥ ६ ॥

टी०—वृद्धावस्था बाघिनीके समान साम्हने खडीहै । सब रोग शत्रुओं समान दांव लगनेसे देहपर दंडप्रहार करनेको उद्यतहैं । जैसे फूटे घडेसे धीरे२पानी निकलताहै वैसेही आयुभी निकलती जातीहै । तोभी लोग जिसमें अपना बुरा होवे वैसाही आचरण करते हैं । यह बडा भारी आश्चर्यहै ॥ ६ ॥

इतो न किंचित्परतो न किंचिद्यतो यतो यामि ततो न किंचित् ॥ विचार्य्य पश्यामि जगन्न किंचित्स्वात्मावबोधादधिकं न किंचित् ॥ ७ ॥

टी०—इससे कुछ नहीं, उससेभी कुछ नहीं । जहां जहां जाता हूं वहांभी कुछ नहीं । बिचारकर देखता हूं । तो यह जगत्भी कुछ नहीं । और आत्मज्ञानसे अधिकभी कुछ नहीं है ॥ ७ ॥

निखिलंजगदेवनश्वरंपुनरस्मिन्नितरांकलेवरम् ॥ अथतस्यकृतेकियानयंक्रियतेहन्तजनैःपरिश्रमः ८॥

टी०—प्रथम तो यह संसारही नाशवान् है । तिसमेंभी शरीर तो निरंतरही नाशवान्है । देखिये ! इस अनित्य शरीरकेलिये मनुष्य कितने छल-कपट-युक्त परिश्रम उठारहे हैं ॥ ८ ॥

कुटुम्बचिन्ताकुलितस्यपुंसः कुलंचशीलंच

गुणाश्चसर्वे ॥ अपक्वकुंभेनिहिताइवापः
प्रयान्तिदेहेनसमंविनाशम् ॥ ९ ॥

टी०–जैसे कच्चे घडेमें जल डालाजाय । तो वह घडाभी शीघ्रही फूट जाताहै । और फूटनेके साथ जलभी गिरजाताहै । वैसेही कुटुम्बकी चिन्तासे जो मनुष्य आकुलहैं । उनके कुल शील गुण सब देहके साथ निष्फलही नाश हो जाते हैं ॥ ९ ॥

पाषाणखंडेष्वपि रत्नबुद्धिःकान्तेतिधीःशोणितमांसपिंडे ॥ पंचात्मकेवर्ष्मणिचात्मभावो जयत्यसौ काचन मोहलीला ॥ १० ॥

टी०–जिस मोहलीलासे पाषाणके टुकडोंको रत्न मानते हैं ॥ रक्त और मांसके लोंदेको सुन्दर स्त्री मानते हैं । पंच तत्वोंसे बने इस कच्चे पुतलेको अपना शरीर मानते हैं वह धन्यहै ॥ १० ॥

गतसारेऽत्रसंसारेसुखभ्रांतिःशरीरिणाम् ॥
लालापानमिवांगुष्ठेबालानांस्तन्यविभ्रमः ॥

टी०–इस असार संसारमें प्राणियोंको सुखकी तो केवल भ्रान्तिहीहै जैसे बालकोंको अंगूठेके चूंखनेमें स्तन्यका भ्रम होताहै॥ ११॥

प्रातर्मूत्रपुरीषाभ्यांमध्याह्नेक्षुत्पिपासया ।
तृप्ताःकामेनबाध्यन्ते प्राणिनोनिशिनिद्रया ॥ १२ ॥

टी०–प्रातःकालमें मलमूत्रके वेगसे मध्याह्नमें क्षुधा और तृषासे तृप्त होनेपर कामसे और रात्रिको नींदसे प्राणी सदा पीडितही रहते हैं ॥ १२ ॥

निर्विवेकतयाबाल्यंकामोन्मादेनयौवनम् ॥
वृद्धत्वंविकलत्वेनसदासोपद्रवंनृणाम् ॥ १३ ॥

टी०—अज्ञानतासे बाल्यावस्थामें । कामके उन्मादसे यौवन अवस्थामें और विकलतासे वृद्धावस्थामें मनुष्योंको सदा उपद्रवही बना रहताहै ॥ १३ ॥

उद्घाटितनवद्वारेपंजरेविहगोऽनिलः ॥
यत्तिष्ठति तदाश्चर्यंप्रयाणेविस्मयः कुतः ॥ १४ ॥

टीका—यह बडाभारी आश्चर्य है कि, जिस शरीररूप पिंजरेके नवद्वार सदा खुलेही रहते हैं । और प्राणवायु रूप पक्षी उसमें रहताहै । यदि निकल जाय तो विस्मयही क्या? ॥ १४ ॥

गतःकामकथोन्मादोगलितोयौवनज्वरः ॥
गतोमोहश्च्युतातृष्णाकृतंपुण्याश्रमेमनः ॥ १५ ॥

टीका—कामकी कथाओंसे जो उन्माद रोग होजाताथा वह मिट गया । यौवन रूप ज्वरभी उतर गया । मोहभी गया । तृष्णापरभी बिजली पडी । अब तो यही इच्छा है । कि कहीं पुण्याश्रमको जा बसें ॥ १५ ॥

पूरयित्वाऽर्थिनामाशांप्रियंकृत्वाद्विषामपि ॥
पारंगत्वाश्रुतौघस्यधन्यावनमुपासते ॥ १६ ॥

टीका—अर्थियोंकी आशा पूर्ण करके शत्रुओंकाभी प्रिय करके और श्रुति सागरके पार निकलकर जो बनमें बसते हैं । वेही धन्य हैं ॥ १६ ॥

रागिण्यपिविरागिण्यःस्त्रियस्तासुरमेतकः ॥
अहंचकलयेमुक्तियाविरागिणि रागिणी ॥ १७ ॥

टीका—अपनेमें आसक्त रहनेवालोंहीसे विमुख होनेवाली ऐसी स्त्रियोंसे कौन रमे? मैं तो मुक्तिही पर आसक्त हूं । जो विरागीपर आसक्त होती है ॥ १७ ॥

यावतःकुरुतेजन्तुः सम्बन्धान्मनसः प्रियान् ॥
तावन्तोऽस्यनिखन्यन्तेहृदयेशोकशंकवः ॥ १८ ॥

टीका–यह प्राणी जितने मनके प्यारे संबंध करताहै । उतनेही इसके हृदयमें दुःखके शंकु गढे हैं । क्योंकि वे सब नाशवान्हैं॥ १८॥

अश्नीमहिवयंभिक्षामाशावासोवसीमहि ॥
शयीमहिमहीपृष्ठेकुर्वीमहि किमीश्वरैः ॥ १९ ॥

टीका–हम भिक्षा मांगकर खाते हैं । आशा वस्त्र पहनते हैं । पृथ्वीपर सोते हैं फिर राजाओंसे हमको क्या? ॥ १९ ॥

निःस्नेहोयातिनिर्वाणंस्नेहोऽनर्थस्यकारणम् ॥
निःस्नेहेनप्रदीपेनयदेतत्प्रकटीकृतम् ॥ २० ॥

टीका–बिना स्नेह (तैल) से बूझ जाताहै स्नेहही अनर्थका कारणहै । बिना स्नेह (तैल) के दीपकसे यह बात निश्चय हुई ॥ २० ॥

मितमायुर्वयोनित्यंनैतियातंकदाचन ॥
परामृशन्तितदपिनभवंभोगलोलुपाः ॥ २१ ॥

टीका–आयुके वर्ष तो गिने हुये हैं। उनमेंभी दिन २ जो घटते हैं । वे पीछे नहीं आते । तो भी भोगोंके लालसी संसारको असत्य नहीं समझते ॥ २१ ॥

मन्येमायेयमज्ञानंयत्सुखंस्वजनादपि ॥
निदाघवारणायालंनिजच्छायानकस्यचित् ॥ २२ ॥

टीका–यह बडा भारी मायामय अज्ञानहै । जो अपने जनोंसे सुखकी इच्छा रखते हैं ॥ अपने शरीरकी छायासे क्यों किसीसेभी सूर्यका धूप निवारण नहीं हो सकताहै? ॥ २२ ॥

पुत्रमित्रकलत्रेषुसक्ताःसीदन्तिजन्तवः ॥
सरःपंकार्णवेमग्नाजीर्णावनगजाइव ॥ २३ ॥

टीका—पुत्र मित्र कलत्र आदिमें आसक्त होकर कीचडमें फँसेहुए हाथियोंकी भाँती जीव दुःख पाते हैं ॥ २३ ॥

आस्तामकंटकमिदंवसुधाधिपत्यं
त्रैलोक्यराज्यमपिनैवतृणायमन्ये ॥
निःशंकसुप्तहरिणीकुलसंकुलासु
चेतःपरंविशतिशैलवनस्थलीषु ॥ २४ ॥

टीका—निडर राजभी रहे । त्रिलोकीका राज्यभी तृणतुल्य समझताहूं । मेरा चित्त तो जहां हरिणीके बच्चे निधडक सोतेहैं । उन्हीं पर्वत और बनस्थलियोंमें प्रसन्न रहताहै ॥ २४ ॥

तेतीक्ष्णदुर्जननिकारशरैर्नभिन्नाधीरास्तएव
शमसौख्यभुजस्तएव॥सीमन्तिनीभुजलतागह
नं व्युदस्ययेऽवास्थिताःशमफलेषुतपोवनेषु ॥२५॥

टीका—उनहीको दुर्जनोंके वचनरूप तीक्ष्ण बाण न लगे । वेही धीरहैं । शान्तिसुखभी उनहींकोहै।जो दुस्त्याज्य स्त्रीकी भुज लताको छोडकर शान्ति सुखहीहै फल जिसका ऐसे तपोवनको चलेगये ॥ २५॥

दधतितावदमीविषयाःसुखंस्फुरतियावदियंहृ
दिमूढता ॥ मनसितत्वविदांतुविवेचकेक्क
विषयाःक्वसुखंक्वपरिग्रहाः ॥ २६ ॥

टीका—जबतक हृदयमें मूर्खता छा रहीहै । तबहीतक इन विषयोंसे सुखप्रतीति होताहै । तत्वकी विवेचनामें मन लगनेपर तो ये परिग्रह विषय सुख सब फीकेहैं ॥ २६ ॥

क्षणंबालोभूत्वाक्षणमपियुवाकामरसिकः
क्षणंवित्तैर्हीनःक्षणमपिचसम्पूर्णविभवः ॥
जराजीर्णैरंगैर्नटइववलीमंडिततनु-
र्नरःसंसारान्तेविशतियमधानीजवनिकाम्॥२७॥

टीका–यह मनुष्य क्षणमें बालरूप और क्षणमें युवा होकर रसिक-रूप क्षणमें दरिद्री क्षणमें धनाढ्य क्षणमें वृद्धावस्थासे सिकुडा हुआ चमड़ा–ऐसे अनेकरूप दिखाकर फिर नट (बहुरूपिये) की भाँति यमराजकी पुरीरूप परदेकी ओटमें छिपजाताहै॥ २७ ॥

क्वचित्कंथाधारीक्वचिदपिचदिव्याम्बरधरः
क्वचिद्भूमीशय्यः क्वचिदपिचपर्य्यंकशयनः ॥
क्वचिद्भिक्षावृत्तिःक्वचिदपिचमृष्टाशनरुचि-
र्महात्मायोगज्ञोनगणयतिदुःखंनचसुखं॥ २८ ॥

टीका–कभी फटी गोदडी पहिननेको मिली । कभी उत्तम वस्त्र शाल दुशालेभी धारण किये । कभी भूमीहीपर पड़े रहे । कभी सुन्दर पर्यंकपर शयन किया । कभी भिक्षासे वृत्ति चली । कभी उत्तम मिष्टान्नसे रुचि मिटी । महात्मा तत्त्ववेत्ता इन बातोंको सुख और दुःख नहीं मानते ॥ २८ ॥

अवश्यंयातारश्चिरतरमुषित्वाऽपिविषया
वियोगेकोभेदस्त्यजतिनजनोयत्स्वयममून् ॥
व्रजन्तःस्वातंत्र्यादतुलपरितापायमनसः
स्वयं त्यक्ताह्येतेशमसुखमनंतं विदधति॥२९ ॥

टीका–चिरकालतक भोगेहुए विषय एक दिन अवश्य छूटेंगे फिर उनके वियोग होनेमें संशयही·क्या रहा ? ॥ कि, जिससे इनको

मनुष्य आप पहिलेहीसे नहीं त्यागतें । क्योंकि जब वे मनुष्योंको छोडेंगे । तो मनुष्योंके मनको बडा सन्ताप होगा । और जो मनुष्य विषयोंको छोडदेवेंगे । तो अनन्त शान्तिसुखकी प्राप्ति होवेगी ॥ २९ ॥

नसंसारोत्पन्नंचरितमनुपश्यामिकुशलं
विपाकःपुण्यानांजनयतिभयंमेविमृशतः ॥
महद्भिःपुण्यौघैश्चिरपरिगृहीताश्चविषया
महान्तोजायन्तेव्यसनमिवदातुं विषयिणाम्॥३०॥

टीका—सांसारिक उत्पन्न चरित्रोंमें हम कुशल नहीं देखते । और पुण्य फल स्वर्गादिकभी विचारसे भयदायकही प्रतीति होते हैं । क्योंकि पुण्यक्षय होनेपर वहांसेभी पतन होना पडताहै । और बडे पुण्योंके समूहसे बहुतादिन पर्य्यन्त इस लोकमेंभी जो विषयादि संचित किये हैं । वेभी विषयी जनोंको अन्तमें दुःखदायकही हैं ॥ ३० ॥

यदाऽसौदुर्वारःप्रसरतिमदश्चित्तकरिण-
स्तदातस्योद्दामप्रसररसरूढैर्व्यवसितैः ॥
क्वतद्धैर्य्यालानंक्वचनिजकुलाचारनिगडः
क्वसालज्जारज्जुःक्वविनयकठोरांकुशमपि ॥ ३१ ॥

टीका—अप्रतिबंध बेगसे जायमान व्यवसायसे धैर्यरूप बंधन स्तंभको उखाडनेवाला निजकुलाचाररूप बेडीको मरोडनेवाला लज्जारूप रस्सीको तोडनेवाला और विनयरूप अंकुशको नहीं गिननेवाला यह चित्तरूप हाथीका मद बडा दुर्वारहै । अर्थात् जो चित्तके मदको जीते । वही शूर वीरहैं । और तो सब कायर हैं॥ ३१ ॥

कुरंगाःकल्याणंप्रतिविटपमारोग्यमटविस्रव
न्तिक्षेमंतेपुलिनकुशलंभद्रमुपलाः ॥ निशा

न्तादस्वन्तात्कथमपिविनिष्क्रान्तमधुनाम
नोऽस्माकंदीर्घामभिलषतियुष्मत्परिचितिम् ॥३२॥

टीका—हे कुशल पूर्वक कोमल घासके गुच्छे खाकर नदीके तीरकी सुन्दर वालूमें बैठनेवाले हरिणो! हमको तो सदा यही अभिलाषा रहतीहै । कि रातको वा दिनको वा अभी जैसे बने वैसे यहांसे निकलकर आपके पास चलेआवें और आपसे हमारी गाढ मित्रता होजाय ॥ ३२ ॥

गतःकालोयत्रप्रणयिनिमयिप्रेमकुटिलः
कटाक्षःकालिन्दीलघुलहरवृत्तिःप्रभवति ॥
इदानीमस्माकंजरठकमठीपृष्ठकठिना
मनोवृत्तिस्तत्किंव्यसनिनिमुधैवग्लपयसि॥३३॥

टीका—वह समय गया । कि जब प्रेमसे टेढे कटाक्ष कालिन्दीकी छोटी छोटी लहरोंकी भाँति हृदयमें लहरानेसे मैं नम्र होजाताथा । अब तो हमारी मनकी वृत्ति वृद्ध कछुएकी पीठकी भांति कठोर होगई है । क्या अब भी वह पहिलेका व्यसन मुझको हर्ष उत्पंन्न करेगा? अर्थात् उस पहिलेके व्यसनसे अब मुझको हर्ष न होगा॥ ३३॥

अहंकारक्षाऽपिव्रजवृजिनहेमात्वमिहभूरभूमिर्दर्पा
णामहमपसरत्वंपिशुनहे । अरेक्रोधस्थानान्तर
मनुसरानन्यमनसांत्रिलोकीनाथोनोहृदिवसतुदे
वोहरिरसौ ॥ ३४ ॥

टीका—अरेभाई! अहंकार ! तू मुझको छोड़कर कहीं अन्यत्र चलाजा । हे टेढेपन ! तूभी मुझको बिसारदे । हे अभिमानकी भूमि! तूभी मेरा पीछा छोड़ । हे पिशुनता ! तूभी मुझको भूलजा । अरे

क्रोध ! तूभी स्थानान्तर प्रति गमनकर । हे दीनरक्षक त्रिलोकीनाथ ! हमारे हृदयमें सदा निवास करे ॥ ३४ ॥

गतःकालोयत्रद्विचरणपशूनांक्षितिभुजांपुरः
स्वस्तीत्युक्त्वाविषयसुखमास्वादितमभूत् ॥
इदानीमस्माकंतृणमिवसमस्तंकलयतामपेक्षा
भिक्षायामपिकिमपिचेतस्त्रपयति ॥ ३५ ॥

टीका—वह समयगया । कि जब दो चरणके पशु राजाओंके पास जाकर "स्वस्ति कल्याण हो" ऐसा कहकर धनादि उपार्जन करके विषय सुखके स्वादका अभिलाषी होना चाहताथा । अब तो ईश्वरकरे।हमको यह सब तृणके समान तुच्छ निश्चय होने लगजावे॥ और भिक्षामें भी लज्जा उत्पन्न होवे। अर्थात् हम निःस्पृही होजाँयः॥ ३५॥

अतिक्रान्तःकालोललितललनाभोगसुखदो
भ्रमन्तःश्रान्ताःस्मःसुचिरमिहसंसारसरणौ ॥
इदानींस्वःसिन्धोस्तटभुविसमाक्रंदनगिरः
सुतारैःफूत्कारैःशिवशिवशिवेतिप्रतनुमः॥ ३६ ॥

टीका—सुन्दर स्त्रियोंके भोगनेमें सुभग (यौवन) काल बीत गया । और बहुत दिनोंसे इस संसारके मार्गमें भ्रमते २ हमभी थक गये । अब तो श्रीगंगाजीके तटकी भूमिपर उक्त स्त्रियोंकी निन्दा करते हुये "शिवरे" इस मंत्रका जप करेंगे ॥ ३६ ॥

आसंसारंत्रिभुवनमिदंचिन्वतांताततादृङ्
नैवास्माकंनयनपदवींश्रोत्रवर्त्मागतोवा ॥
योऽयंधत्तेविषयकरिणीगाढगूढाभिमानः
क्षीबस्यान्तःकरणकरिणःसंयमालानलीलाम् ॥३७॥

टीका-हे भाई! हम ढूंढते फिरते हैं कि, जबसे यह संसार प्रवृत्त हुआ तबसे आजतक कोई ऐसा पुरुष देखने वा सुननेमें नहीं आया कि, जिसने विषयरूप हथिनीमें उत्पन्न हुआ है अहंकार जिसको ऐसे अन्तःकरणरूप हाथीको रोककर वशमें कियाहो अर्थात् विषयोंमें फँसाहुआ मन वशमें नहीं हो सकता ॥ ३७ ॥

महीरम्याशय्याविपुलमुपधानंभुजलता
वितानंचाकाशंव्यजनमनुकूलोऽयमनिलः ॥
स्फुरद्दीपश्चन्द्रोविरतिवनितासङ्गमुदितः
सुखंशान्तःशेतेमुनिरतनुभूतिर्नृपइव ॥ ३८ ॥

टीका-भूमिही जिसकी सुन्दर शय्याहै, भुजाही उपधान (तकिया) है आकाशही वितान (चंदवा) है अनुकूल वायुही पंखा और चंद्रमाही प्रकाशमान् दीपकहै ? इन सामग्रीयोंसे सुखपूर्वक विरक्ततारूप स्त्रीके साथ शांत पुरुष बडे ऐश्वर्यमान् राजाके समान शयन करताहै ॥ ३८ ॥

आयुर्वायुव्यथितनलिनीपत्रमित्रंकिमन्य-
त्संपच्छम्पाद्युतिसहचरीस्वैरचारीकृतान्तः ॥
कस्मादस्मिन्भ्रमसितमसित्वंप्रयाहिप्रयागं
पौनःपुन्यंभुविभगवतीस्वर्धुनीतिधुनीते॥ ३९ ॥

टीका-यह आयु तो वायुसे व्यथित कमलके पत्रकी भाँति चंचल है. और अन्य संपदाभी कोई तेरे साथ चलनेवाली नहीं है । और अन्तकाल तो स्वेच्छाचारी है । अर्थात् जब उसकी अवधि होगी । तुझको अवश्य पकड लेगा । फिर क्यों व्यर्थही अंधेरेमें भ्रम रहाहै? सबको छोडकर प्रयागको चलाजा । कि जहां संसारमें अक्षय पुण्यकी दाता श्रीगंगाजी लहरारही है ॥ ३९ ॥

पूर्वंतावत्कुवलयदृशांलोललोलैरपांगैराक-
र्षद्भिःकिमपिहृदयंपूजितायौवनश्रीः ॥ संप्र-
त्यन्तर्निहितसदसद्भावलब्धप्रबोधप्रत्याहारै
र्विशदहृदयेवर्त्ततेकोऽपिभावः ॥ ४० ॥

टीका—पहिले तो यह यौवन अवस्था कमलके समान नेत्रवाली स्त्रियोंके चंचल अपांगोंसे मनके आकर्षण होनेके कारण इस हृदयको बडी प्यारीथी ॥ अब तो अन्तःकरणमें सत् और असत् भाव के विचारद्वारा कुछ ज्ञानके लाभ होनेसे इन्द्रियोंका आकर्षण होनेके कारण उसी स्वच्छ हृदयमें दूसराही कोई भाव है ॥ ४० ॥

मातर्मायेभगिनिकुमतेहेपितर्मोहजाल
व्यावर्तध्वंभवतुभवतामेषदीर्घोवियोगः ॥
सद्योलक्ष्मीरमणचरणभ्रष्टगंगाप्रवाह
व्यामिश्रायांदृषादिपरमब्रह्मदृष्टिर्भवामि ॥४१॥

टीका—हे मायारूप माता ! हे कुमतिरूप बहिन! हे मोहजाल रूप पिता ! हमको छोडिये । आपका और हमारा यह अंतका मिला पहै । अब हमारी तो यह इच्छाहै । कि गंगाके प्रवाहसे धुलीहुई चट्टानोंपर बैठकर परब्रह्ममें दृष्टी लगावें ॥ ४१ ॥

गंगातीरेहिमगिरिशिलाबद्धपद्मासनस्य
ब्रह्मध्यानाभ्यसनविधिनायोगनिद्रांगतस्य ॥
किंतैर्भाव्यंममसुदिवसैर्यत्रतेनिर्विशंकाः
संप्राप्स्यन्तेजरठहरिणाःशृंगकंडूविनोदम् ॥४२॥

टीका—हमारे वे सुदिन कब आवेंगे कि जब हम गंगाके तीरमें हिमालयकी शिलापर पद्मासन लगाकर बैठे हैं और ब्रह्मज्ञानके

अभ्याससे विधिपूर्वक नेत्र मूंदकर योग निद्रामें प्राप्त हैं । और वृद्ध २ हरिण निधडक होकर हमारी देहमें अपने शृंगको रगडकर शृंग की खुजली मिटा रहे हैं ॥ ४२ ॥

भेदाभेदौसपदिगलितौपुण्यपापे विशीर्णे
मायामोहौक्षयमुपगतौनष्टसंदेहवृत्तेः ॥
शब्दातीतंत्रिगुणरहितंप्राप्यतत्वाववोधंनिस्त्रै
गुण्येपथिविचरतःकोविधिःकोनिषेधः ॥ ४३ ॥

टीका—संदेहकी वृत्तिके नाश हो जानेसे जिनके भेद और अभेद गल गये हैं । पुण्य और पाप मिट गये हैं । माया और मोह क्षय-को प्राप्त हुएहैं । शब्दसे अतीत त्रिगुण रहित तत्वज्ञानको प्राप्त हो-कर त्रिगुणरहित मार्गमें बिचरनेवालोंको विधी और निषेध कुछ-भी नहींहै ॥ ४३ ॥

कस्मात्कोऽहंकिमपिचभवान्कोऽयमत्रप्रपंचः
स्वंस्वंवेद्यंगगनसदृशंपूर्णतत्वप्रकाशम् ॥
आनंदाख्यंसमरसघनेबाह्यमन्तर्विहीनेनिस्त्रै-
गुण्येपथिविचरतःकोविधिःकोनिषेधः ॥ ४४ ॥

टीका—मैं कहांसे आया? कौन हूं? तू कौनहै? इत्यादि यह क्या प्रपंच फैल रहाहै । इसे असत्य समझकर बाह्य और भीतर रहित समरस धन नित्यानन्द पूर्णतत्वप्रकाश आकाशवत् सर्वव्यापी ईश्वर को समझकर त्रिगुणरहित मार्गमें विचरनेवालेको विधि और निषेध कुछभी नहीं है ॥ ४४ ॥

रेकंदर्पकरंकदर्थयसिकिंकोदंडटंकारवै
रेरेकोकिलकोमलैःकलरवैःकिंत्वंवृथाजल्पसि ॥

मुधेस्निग्धविदग्धक्षेपमधुरैर्लोलैःकटाक्षैरलं
चेतश्चुम्बितचन्द्रचूडचरणध्यानाऽमृतंवर्त्तते॥४५॥

टीका—अरे कामदेव ! धनुष्यकी टंकारके शब्दोंसें हाथको क्यों उठाताहै? रे कोकिल! (कोयल!) तू क्यों वृथा बोलताहै? तेरे मीठे स्वरसे कुछ न होगा । और हे मुग्धे स्त्री ! तेरे स्नेहयुक्त और मधुर कटाक्षोंसेभी कुछ न होगा । अर्थात् तुम्हारा श्रम व्यर्थ है । क्यों कि अब हमारे चित्तमें शिवजीके चरणोंका ध्यानरूप अमृत भराहै अर्थात् तुमको समानेको स्थान नहीं है ॥ ४५ ॥

मातर्मेदिनितातमारुतसखेतेजःसुबंधोजल
भ्रातर्व्योमनिबद्धएवभवतामेषप्रणामांजलिः ॥
युष्मत्सङ्गवशोपजातसुकृतोद्रेकस्फुरन्निर्मल-
ज्ञानापास्तसमस्तमोहमहिमालीयेपरेब्रह्मणि ॥४६॥

टीका—हे पृथ्वी माता! हे वायु पिता! हे मित्र अग्नि! हे बंधु जल! और हे भाई आकाश ! तुमको हाथ जोडकर अंतसमयमें प्रणाम करता हूं । तुम्हारे संगसे पुण्य बना । पुण्यके उदय होनेसे निर्मल ज्ञान हुआ । निर्मलज्ञान होनेसे मोहमहिमा दूर हुई । अब हम परब्रह्ममें लीन होतेहैं । अर्थात् तुम पंचतत्वोंसे रचित देहसे मुझ-को ब्रह्मज्ञानमें सहायता मिली । और ब्रह्मज्ञान मिलजानेसे फिर तुम्हारी भेंट न होगी इसीलिये तुमको प्रणाम करताहूं ॥ ४६ ॥

आशानामनदीमनोरथजलातृष्णातरंगाकुला
रागग्राहवतीवितर्कविहगाधैर्य्यद्रुमध्वंसिनी ॥
मोहावर्त्तसुदुस्तरातिगहनाप्रोत्तुंगचिन्तातटी

तस्याःपारगताविशुद्धमनसोनंदन्तियोगीश्वराः॥७४

टीका—आशानाम एक नदीहै। मनोरथरूप उसमें जल भराहै। तृष्णारूपी उसमें तरंगहैं। स्नेहरूप उसमें मगर मच्छहैं। नानाप्रकारकी तर्कही उसमें पक्षी हैं। धैर्य्यरूप वृक्षको गिरानेवाली है। मोहरूप उसमें भँवर पडते हैं। इसीसे वह बडी दुस्तर और कठिनहै। बडी२ चिन्तारूप उसके तटहैं। उससे पार होकर बडे निर्मल मनवाले योगीश्वरही आनन्द पाते हैं॥ ४७॥

सन्त्येकेधनलाभमात्रगहनाव्यामोहसंमूर्छिताः
केचिद्दैवतसुन्दरीस्तनपरीरंभश्रमव्याकुलाः॥
अन्तर्भूतसमस्ततत्वनिवहंचिन्मात्रशेषंशिवं
दृष्ट्वाहृष्टतनूरुहांकुरभराःकष्टंनशिष्टाःक्वचित् ४८

टीका—कईएक तो धनके लाभ मात्रहीके गहन मोहसे मूर्छित हो रहे हैं। और कोई सुन्दरीके स्तनोंका परिरम्भण करनेके श्रमसे व्याकुल होरहे हैं। परन्तु कष्टका विषयहै। कि समस्त प्राणीमात्रके अन्तर्गत होकर संपूर्ण तत्वोंको बहनेवाले चिन्मात्र परमात्माको चिन्तवन करके हर्षसे रोमांचित होनेवाले कोई न रहे। अर्थात् बहुतही थोडे रहे गये हैं॥ ४८॥

धावन्तःप्रतिवासरंदिशिदिशिप्रत्याशयासंपदां
दृष्ट्वाकालवशेनहन्तफलितंकस्याऽपिदैवद्रुमम्॥
श्रावंश्रावमवज्ञयोपहसितंसर्वत्रभग्नोद्यमा
जीवामःपरमार्थशून्यहृदयास्तृप्तामनोमोदकैः ४९॥

टीका– प्रतिदिन आशाके मारे चारों ओर दौडते हुए कालवशसे किसीका प्रारब्ध उदय हुआ देखकर लंबी श्वासा डालकर भग्नोद्यम होकर परमार्थसे शून्य है हृदय जिनका ऐसे हम मनहीके लड्डुओंसे तृप्त होकर जी रहे हैं ॥ ४९ ॥

येषांवल्लभयासहक्षणमपिक्षिप्रंक्षपाक्षीयते
तेषांशीतकरःशशीविरहिणामुल्केवसंतापकृत् ।
अस्माकंतुनवल्लभानविरहस्तेनोभयभ्रंशिना
मिन्दूराजतिदर्पणाकृतिरसौनोष्णोनवाशीतलः ५०

टीका–जिनको स्त्रीके साथ रहनेसे सारीरात क्षणतुल्य जाती थी । उनको स्त्रीका वियोग होनेसे चंद्रमा अग्निके ज्वालाके समान हृदयमें सन्ताप देताहै । हमारे तो न तो कोई प्यारी है और न उसका वियोगहै, इसीलिये यह चन्द्रमा दर्पणके आकार आकाशमें दिखलाई देताहै । न तो उष्णहै । और न शीतल है ॥ ५० ॥

आदित्यस्यगतागतैरहरहःसंक्षीयतेजीवितं
व्यापारैर्बहुकार्यभारगुरुभिःकालोनविज्ञायते॥
दृष्ट्वाजन्मजराविपत्तिमरणंत्रासश्चनोत्पद्यते
पीत्वामोहमयींप्रमादमदिरामुन्मत्तभूतंजगत् ॥५१॥

टीका–सूर्यके उदय और अस्त होनेसे दिन दिन आयुः घटती जाती है । अनेक कार्योंके व्यापारोंसे समय बीता जाताहै । और जाना नहीं जाता । और जन्म बुढापा विपत्ति मरण आदि देखकर भी त्रास नहीं होता । इससे निश्चय हुआ । कि मोहमयी प्रमाद रूपी मदिराको पान करके जगत् मतवाला हो रहाहै ॥ ५१ ॥

स्मारस्मेरमदोन्नमत्कुचतटीकान्ताकरान्दोलितैः
पुष्पाम्भोनिचितैरुशीररचितैःकिंतालवृन्तैर्मम ॥
अन्वानन्दवनंसुखंशिशयिषोरर्धप्रमीलद्दृशो
यातायातपरिश्रमंशमयितागंगातरंगानिलः ॥५२ ॥

टीका–काम हास्य मद इनसे उन्नमत्कुचतटीवाली स्त्रियोंके हाथोंको दोलन करनेवाले चंदन और पुष्पोंसे युक्त ऐसे तालस्वर सहित छन्दोंसे हमें क्या? हम तो आनंदवन और सुखको शयन की इच्छायुक्त अर्द्धनेत्रमीलित बनेंगे । और हमारा परिश्रम तो गंगाके तरंगोंसे शीतल पवन द्वारा मिटेगा ॥ ५२ ॥

नित्याऽनित्यविचारणाप्रणयिनीवैराग्यमेकंसुहृ-
न्मित्राण्येवयमादयःशमदमप्रायाःसखायोमताः॥
मैत्र्याद्याःपरिचारिकाःसहचरीनित्यंमुमुक्षाबला
दुच्छेद्यारिपवश्चमोहममतासंकल्पवैरादयः॥ ५३ ॥

टीका–नित्य और अनित्य के विचारनेवाली बुद्धिही प्यारी है । वैराग्य मित्रहै । यम नियमादिभी मित्र हैं । शम दमादि सखा हैं। और मुक्ति पानेकी इच्छाही सखीहै । इसलिये इन मित्रादिकों को साथ रखना चाहिये । और मोह ममता संकल्प अर्थात् अनेक प्रकारकी इच्छा वैर इत्यादि शत्रु हैं । इसलिये इनको बलात्कार-से छेदन करना चाहिये ॥ ५३ ॥

पुण्यैर्मूलफलैःप्रियेप्रणयिनीवृत्तिंकुरुष्वाधुना
भूशय्यानववल्कलैरकरणैरुत्तिष्ठयामोवनम् ॥

क्षुद्राणामविवेकमूढमनसांयत्रेश्वराणांसदा
चित्तव्याधविवेकविह्वलगिरांनामाऽपिनश्रूयते ।५४॥

टीका–हे बुद्धि प्रणयिनि [प्रीतिकरनेवाली] उठ । अब हम बन में जाते हैं । सो तूभी चल और पवित्र फल मूलसे अपना पोषण कर । बनी बनाई भूमि शय्या और बने बनाये नवीन वल्कलके वस्त्रोंसे निर्वाह कर । जिस बनमें अविवेकसे जिनका मन मूढ है । और जो क्षुद्र हैं । और धनरूपी व्याधिजनित अविचारसे जिनकी बुद्धि विह्वलहै । उनका नामभी सुनाई नहीं देता ॥ ५४ ॥

कृत्वादीननिपीडनांनिजजने बद्धावचोनिग्रहं
नैवालोच्यगरीयसीरपिचिरादामुष्मिकीर्यातनाः ॥
द्रव्यौघाःपरिसंचिताःखलुमयायस्याः कृतेसांप्रतं
नीवारांजलिनाऽपिकेवलमहोसेयंकृतार्थातनुः ।५५॥

टीका–जिस देहकेलिये नाना प्रकारसे दीनोंको दुःख देकर अपने जनोंमें वाणीका निग्रह बांधकर आमुष्मिकी पीडाको न देख कर केवल द्रव्यही संग्रह किया । आज उसी कर्मके पर्याप्तमें वही देह एक अंजुलिभर नीवार (तृण धान्य विशेष) के मिल जानेसे भी तृप्तहै । अर्थात् जब इतनेसेभी तृप्तहो सकती है । तो फिर मैंने उक्त परिश्रम व्यर्थही किया ॥ ५५ ॥

याञ्चाशून्यमयत्नलभ्यमशनं वायुःकृतोवेधसाव्या-
लानांपशवस्तृणांकुरभुजःसुस्थाःस्थलीशायिनः ॥
संसारार्णवलंघनक्षमाधियांवृत्तिःकृतासानृणां
यामन्वेषयतांप्रयान्तिसततं सर्वेसमाप्तिंगुणाः॥५६॥

टीका—उस विधाताकी बडी भारी मूर्खताहै । कि जिसने सर्पोंके लिये बिना मांगे और विनाही प्रयत्न किये मिलनेवाला वायु भोजन बनाया । और पशुओंको ऐसे बनाये । कि जो तृण अंकुरादि खाकर भूमिपर लेटकर निर्वाह करलें । परंतु खेदका विषयहै । कि संसारसागरको उल्लंघन करनेमें समर्थ ऐसे मनुष्योंकी वृत्ति तो ऐसी बनाई । कि जिसके संपादन करने में सब गुण समाप्ति होजाते हैं॥५६॥

शय्याशाद्वलमासनंशुचिशिलासद्मद्रुमाणामधः
शीतंनिर्झरवारिपानमशनंकन्दाः सहाय्यामृगाः ॥
इत्यप्रार्थितलभ्यसर्वविभवे दोषोऽयमेकोवनेदुष्प्रा
पार्थिनियत्परार्थ घटनावंध्यैर्वृथा स्थीयते ॥ ५७ ॥

टीका—सुन्दर कोमल हरे घासकी अथवा पवित्र चट्टानोंकी तो शय्या—और वृक्षोंकी छायारूप बना बनाया घर झरनोंका पानी पीनेकेलिये कन्द मूल फल भोजनके लिये और हरिण मित्र वर्ग हैं । ऐसे बिना मांगे सब विभव मिलनेवाले वनमें एक दोषहै । कि वहां पर मांगनेवाले याचकोंको उत्तरदाता कोई नहीं है ॥ ५७ ॥

भोगेरोगभयंकुलेच्युतिभयंवित्तेनृपालाद्भयं
मौनेदैन्यभयं बले रिपुभयंरूपे जरायाभयम् ॥
शास्त्रेवादभयंगुणेखलभयंकायेकृतान्ताद्भयं
सर्ववस्तुभयान्वितंभुविनृणांवैराग्यमेवाभयम्॥५८॥

टीका—भोगमें रोगका भय कुलमें च्युतिकाभय अधिक धन होनेमें राजभय मौन होनेमें दीनताका भय बलवान्को रिपुका भय रूपमें वृद्धावस्थाका भय शास्त्रसे मानबढनेमें अपमानका भय सद्गुण में दुर्जनका भय और शरीरमें मृत्युका भय ऐसे पृथ्वीमें सब वस्तु भययुक्त हैं । केवल एक वैराग्यहीमें निर्भयता है ॥ ५८ ॥

सौजन्याम्बुमरुस्थली सुचरितालेख्यद्युभित्तिर्गुण
ज्योत्स्नाकृष्णचतुर्दशीसरलतायोगश्वपुच्छच्छटा ॥
यैरेषाऽपिदुराशयाकलियुगेराजावलीसेविता
तेषांशूलिनिभक्तिमात्रसुलभेसेवाकियत्कौशलम्॥५९

टीका–सज्जनतारूप जलकी तो मरुस्थली । सुचरितके आलेख्य रूप दिवसके आडीभींत । गुणरूप चांदनीको कृष्णा चतुर्दशी सरलता और योगको कुत्तेकी पूंछकी छटा ऐसी कलियुगमें कठोर आशा करके जिन्होंने राजाओंकी पंक्ति सेवनकी है उनको भक्ति मात्रहीसे सुलभ महादेवजीकी सेवा कितनी कुशलता देगी? ॥५९॥

बीभत्साविषयाजुगुप्सिततमःकायोवयोगत्वरं
प्रायोबंधुभिरध्वनीवपथिकैर्योगोवियोगावहः ॥
हातव्योऽयमसारएषविरसःसंसारइत्यादिकंसर्वस्यै
वहिवाचिचेतासिपुनःकस्याऽपि पुण्यात्मनः॥६०॥

टीका–ये विषय बीभत्साके दाताहैं । यह शरीरभी अनित्यहै । आयुः भी बीत जानेवालीहै । जैसे मार्गमें मार्गचलनेवालोंका साथ होकर वियोग होजाताहै । वैसेही इन भाइ बंधुओंका योगभी एक दिन वियोग होनेवालाहै । और यह नीरस असार संसार त्याज्यहै । ऐसे मुखसे तो सबही केसे सुना जाताहै । परंतु चित्तमें तो किसी विरलेही धर्मात्माके होगा ॥ ६० ॥

पुत्रःस्यादितिदुःखितःसतिसुतेतस्यामयेदुःखित-
स्तद्दुःखादिकमार्जनेतदनयेतन्मूर्खता दुःखितः ॥
जातश्चेत्सगुणोऽथतन्मृतिभयंतस्मिन्मृतेदुःखितः
पुत्रव्याजमुपागतोरिपुरयंमाकस्यचिज्जायताम् ६१

टीका–पहिले तो पुत्र होनेकी इच्छाहीसे दुःख बना रहताहै । यदि हुआ । तो उसके रोगी होनेसे चिन्ता रहतीहै । फिर उसके रोग मिटे ऐसे उपायोंकी चिन्ता रहती है । फिर यह जूवा चोरी आदि न सीखजाय । यह चिन्ता रहती है । फिर यह मूर्ख न रह जाय यह चिन्ता । यदि पढ गया । तो यह मर न जाय । यह चिन्ता । और यदि मरगया तो शिर फोड २ कर रोते हैं । यह दुःख। तो इतने दुःखका दाता पुत्र क्याहै । यह तो एक छल करके पुत्ररूप बनाहुआ शत्रुहै ऐसा शत्रु किसीको न होय ॥ ६१ ॥

सूक्तिंकर्णसुधांव्यनक्तुसुजनस्तस्मिन्नमोदामहे
ब्रूतांवाचमसूर्यकोविषमुचंतस्मिन्नखिद्यामहे ॥
यायस्यप्रकृतिःसतांवितनुतांकिंनस्तयाचिन्तया
कुर्मस्तत्खलुकर्मजन्मनिगडच्छेदाययज्जा
यते ॥ ६२ ॥

टीका–कानोंको प्यारी लगनेवाली मीठी भाषा सज्जन बोला करे। उससे हमको हर्ष नहीं है । और दुर्जन विष टपकती हुई कडवी भाषा बोला करे । उससे भी हमको खेद नहीं है । जिसकी जो प्रकृतिहै । वह अपनी प्रकृति अनुसार चलै । उसमें हमको कोई चिन्ता नहीं । हमको तो वह प्रयत्न करना चाहिये । कि जिससे जन्म मरणरूप बेडी छूट जाय अर्थात् दुर्लभ मोक्ष मिले ॥ ६२ ॥

जिह्वेलोचननासिकेश्रवणहेत्वक्चाऽपिनोवा-
र्यसेसर्वेभ्योऽस्तुनमःकृतांजलिरहंसप्रश्रयं
प्रार्थये ॥ युष्माकंयदिसंमतंतदधुनानात्मान
मिच्छाम्यहंहोतुंभूमिभुजांनिकारदहनज्वा-
लाकरालेगृहे ॥ ६३ ॥

टीका—हे जिह्वा-नेत्र-नासिका-कान-त्वचा-आपलोगोंको नमस्कार-है। यदि आपलोगोंकी आज्ञाहै। तो मैं हाथ जोडकर आप लोगों-के साम्हने एक प्रार्थना करता हूं। कि यदि आप लोगोंकी संमति है। तो अब मैं अपमानरूप अग्निकी ज्वालासे भयंकर ऐसा जो राजाओंका घरहै। उसमें जाकर अपनी आत्माको न होमूं। अर्थात् यदि आप बनही में संतुष्ट रहो तो मैं मांगनेसे अपना अपमान न कराऊं ॥ ६३ ॥

सत्यंवक्तुमशेषमस्तिसुलभावाणीमनोहारिणी
दातुंदानवरंशरण्यमभयंस्वच्छंपितृभ्यो
जलम् ॥ पूजार्थंपरमेश्वरस्यातिमलःस्वाध्याय
यज्ञःपरंक्षुद्व्याधेःफलमूलमस्तिशमनंक्ले-
शात्मकैःकिंधनैः ॥ ६४ ॥

टीका—सत्य बोलनेकेलिये सुलभ बाणी है। पितरोंके तर्पणके लिये स्वच्छ जलहै। ईश्वरकी पूजाकेलिये स्वाध्याय (वेदपाठ) रूप उत्तम यज्ञ है। और क्षुधारूप पीडाके मिटानेकेलिये कंद मूल फल आदि बहुत हैं। तो फिर अनेक प्रकारके क्लेशोंसे उत्पन्न होनेवाले धनको क्या करना है? ॥ ६४ ॥

यत्क्षान्तिःसमयेश्रुतिःशिवशिवेत्युक्तौमनो
निर्वृत्तिर्भैक्षेत्राऽभिरुचिर्धनेषुविरतिःशश्वत्स-
माधौरतिः ॥ एकान्तेवसतिर्गुरौप्रतिनतिःसद्भिः
समंसंगतिःसत्त्वेप्रीतिरनंगनिर्जितरसौसन्मु-
क्तिमार्गेस्थितिः ॥ ६५ ॥

टीका—क्षमा समयपर श्रुति रहना शिव २ उच्चारण करनेमें मनकी वृत्ति रहना भिक्षान्नमें प्रीति। धनसे प्रीतिका हटना। निरंतर

समाधिमें रति एकान्तमें वसती बडोंमें नम्रता महात्मा जनोंकी संगति जीव मात्रमें प्रीति कामदेवका जीतना इत्यादि सन्मुक्ति मार्गकी स्थितिके लक्षण हैं ॥ ६५ ॥

भिक्षाहारमदैन्यमप्रतिहतंभीतिच्छदंसर्वदा
दुर्मात्सर्यमदाऽभिमानमथनंदुःखौघविध्वंस-
नम् ॥ सर्वत्रान्नहमप्रयत्नसुलभंसाधुप्रियंपावनं
शंभोःसत्रमवार्यमक्षयनिधिंशंसन्तियोगीश्वराः ६६

टीका–भिक्षाहार अदीनता मनोभंगतासे रहित सर्वदा भयका नाश दुर्मात्सर्य मद अभिमान आदिका मथन दुःखके समूहका नाश प्रतिदिन अयत्नहीसे सुलभ साधु प्रिय पावन अवार्य और अक्षय का निधि ऐसा जो शंभुका बनहै । उसकी योगीश्वर प्रशंसा करते हैं ॥ ६६ ॥

धैर्य्यंयस्यपिताक्षमाचजननीशान्तिश्चिरंगेहिनी
सत्यंसूनुरयंदयाचभगिनीभ्रातामनःसंयमः ॥
शय्याभूमितलंदिशोऽपिवसनंज्ञानामृतंभो-
जनमेतेयस्यकुटुम्बिनोवदसखेकस्माद्भयं
योगिनः ॥ ६७ ॥

टीका–धैर्य जिसका पिता है । क्षमा जननी है । शान्ति स्त्री है । सत्य पुत्र है । दया बहिन है । मनका निग्रह करना यही भाई है । भूमि शय्या है । दशों दिशाही वस्त्र हैं। अमृतरूप ज्ञानही भोजन है। जिसके पास ऐसे २ कुटुम्बी और ऐसी २ सामग्री है । उस योगी-श्वरको किसका डर है? ॥ ६७ ॥

आघ्रातंमरणेनजन्मजरयायात्युल्बणंयौवनं
संतोषोधनलिप्सयाशमसुखंप्रौढांगनावि-

भ्रमैः॥लोकैर्मत्सरिभिर्गुणावनभुवोव्यालैर्नृपा
दुर्जनैरस्थैर्येणविभूतिरप्यपहृताग्रस्तंनकिं
केनवा ॥ ६८ ॥

टीका—मृत्यूने जन्मको । वृद्धा अवस्थाने यौवनको।धनकी इच्छाने संतोषको, सुन्दर स्त्रियोंके हावभावने । शान्तिसुखको मत्सरी (जो दूसरोंकी बडाई न सहसके) लोगोंने गुणोंको । सर्पोंने वनभूमिको । दुर्जनोंने राजाओंको और चंचलताने धैर्यको ऐसेही इस संसारमें किसने किसको नहीं ग्रास कर रक्खा है ॥ ६८ ॥

जातोऽहंजनकोममैषजननीक्षेत्रंकलत्रं कुलं
पुत्रामित्रमरातयोवसुबलंविद्यासुहृद्बांधवाः ॥
चित्तस्पन्दितकल्पनामनुभवन्विद्वानविद्या
मयीं निद्रामेत्यविघूर्णितोबहुविधान् स्वप्नानि-
मान्पश्यति ॥ ६९ ॥

टीका—मैंने जन्म लिया यह मेरे पिता है । यह मेरे माता है यह मेरा खेत है यह मेरी स्त्री है मैंने कैसे उत्तम कुलमें जन्म लिया। ये मेरे पुत्र हैं । ये मेरे मित्र हैं।ये शत्रु हैं।मैं कैसा धनी हूं । मुझमें कैसा पराक्रम है । मैं कैसा विद्यावान् हूं । ये मेरे सुहृद्गण हैं । ये भाईबंधु बंधु हैं ॥ इत्यादि चलायमान चित्तकी कल्पना करताहुआ अविद्यारूप निद्राको प्राप्त होकर भ्रमसे अनेक प्रकारके झूटे स्वप्न देखता है ॥ ६९ ॥

लाटीनेत्रपुटीपयोधरघटीक्रीडाकुटीदोस्तटी
पाटीरद्रुमवर्णनेनकविभिर्मूढैर्दिनंनीयते ॥
गोविंदेतिजनार्दनेतिजगतांनाथेतिकृष्णेतिच
व्याहारैः समयस्तदेकमनसांपुंसामतिक्रामति ७०॥

टीका–मूर्ख कवि किसी देशका वा नेत्रोंके परस्पर संबंधका वा पयोधर (स्तनरूप) घडेका वा क्रीडाकुटी (नाटकआदिकास्थान) का वा किसी पर्वतआदिके शिखरका वा मेघका वा वृक्षादिकोंका वर्णन करके व्यर्थ दिन गँवाते हैं ॥ और उसी समयको एकमनवाले भक्तलोग गोविन्द-जनार्दन-जगन्नाथ-कृष्ण आदिका नामस्मरणकरके अतिक्रमण करते हैं ॥ ७० ॥

हेयंहर्म्यमिदंनिकुंजभवनंश्रेयंप्रदेयंधनंपेयं
तीर्थपयोहरेर्भगवतोगेयंपदांभोरुहम् ॥ नेयंजन्म
चिरायदर्भशयनेधर्मेंनिधेयंमनःस्थेयंतत्रसितासि
तस्यसविधेध्येयंपुराणंमहः ॥ ७१ ॥

टीका–महल त्याज्यहै । वन सेवनीय है । धन दान देना चाहिये । तीर्थजल पान करना चाहिये । धर्ममें मन लगाना चाहिये । गंगा यमुनाके निकट वसना चाहिये । पुराणपुरुषोत्तम श्रीभगवानका ध्यान करना चाहिये ॥ ७१ ॥

धिग्धिक्तान्क्रिमीनिर्विशेषवपुषःस्फूर्जन्महासिद्धयो
निष्पन्दीकृतशान्तयोऽपिचतमःकारागृहेष्वासते ॥
तंविद्वांसमिहस्तुमःकरपुटीभिक्षान्नशाकोऽपिवा
बालावक्त्रसरोजिनीमधुनिवायस्याविशेषोरसः ७२॥

टीका–उन कीडोंको धिक्कार है जो महासिद्धियोंको याद करतेहुए शान्तिको जड पेडसे उखाडकर गृहरूप अंधकारमय कारागारमें पडे रहते हैं । हम तो उस विद्वान्की स्तुति करते हैं कि जो हाथमें माँगीहुई भिक्षाके शाकके पत्तेमें और बाला स्त्रीके भोगमें तुल्य सुख समझता हो । अर्थात् भिक्षामें जिसको विषाद नहीं । और भोगमें जिसको हर्ष नहीं । वही धन्य है ॥ ७२ ॥

एकाकीनिःस्पृह शान्तःपाणिपात्रोदिगम्बरः ॥
कदाशंभोभविष्यामिकर्मनिर्मूलनक्षमः ॥ ७३ ॥

टीका–हे शिव ! असंग इच्छारहित और शान्तरूप हाथहीका पात्र बनाये दिगंबर और कर्मोंकी जड उखाडनेमें समर्थ ऐसे हम कब होवेंगे ॥ ७३ ॥

जीर्णाकंथाततःकिंसितममलपटंपट्टसूत्रंततःकिं
एकाभार्याततःकिंहयकरिसुगणैरावृतोवाततःकि
म् ॥ भक्तंभुक्तंततःकिंकदशनमथवावासरान्तेत-
तःकिंव्यक्तज्योतिर्नवांतर्मथितभवभयंवैभवंवा
ततःकिम् ॥ ७४ ॥

टीका–पुरानी गोदडी धारण की तो क्या? और उज्ज्वल निर्मल वस्त्र वा पीताम्बर पहिना तो क्या? एकही स्त्री पास रही तो क्या? और हाथी घोडोंके अच्छे समुदायोंसे युक्त रहे तो क्या? अच्छे भोजन किये तो क्या? और कुत्सित अन्न सायंकालको मिला तो क्या? जिससे भवभय होजाय ऐसे परब्रह्मकी ज्योतिको हृदयमें नहीं जानी। और बडा विभव पायाही तो क्या?७४॥

नाऽयंतेसमयोरहस्यमधुनानिद्रातिनाथोयदि
स्थित्वाद्रक्ष्यतिकुप्यतिप्रभुरितिद्वारेषुयेषांवचः ॥
चेतस्तानपहाययाहिभवनंदेवस्यविश्वेशितुर्निर्दौ-
वारिकनिर्दयोक्तपरुषंनिःसीमशर्मप्रदम् ॥ ७५ ॥

टीका–अभी तुम्हारा समय नहीं है। महाराज एकान्त बैठे कुछ विचार कररहे हैं। अभी शयन करते हैं। तुम यहांपरसे उठो। तुमको बैठे देखेंगे। तो महाराज हमारे पर क्रोध करेंगे। ऐसे वचन जिनके द्वारपर द्वारपाल बोल रहे हैं। उनको छोडकर हे चित्त विश्वे-

श्वरकी शरणमें चला जा । कि जहां द्वारपर रोकनेवाला कोई नहीं है । और जहां निर्दय और कठोर वाक्य सुननेमें नहीं आते । और जहां अनंत सुख है ॥ ७५ ॥

शय्याशैलशिलागृहंगिरिगुहावस्त्रंतरूणांत्वचः
सारंगाःसुहृदोननुक्षितिरुहांवृत्तिःफलैःकोमलैः॥
येषांनिर्झरमंबुपानमुचितंरत्येवविद्यांगनामन्येते
परमेश्वराःशिरसि यैर्बद्धो न सेवांजलिः ॥ ७६ ॥

टीका—पर्वतकी चट्टान जिनकी शय्या । और कंदराही घर है । वृक्षोंकी छालही वस्त्र और हरिणही मित्र हैं वृक्षोंके कोमल फलादि भोजन और झरनोंका स्वच्छ जल पान है । विद्यारूपी स्त्रीसे जिनकी प्रीति है । उनको हम परमेश्वर मानते हैं । कि जिन्होंने सेवाकेलिये दूसरोंको हाथ नहीं जोडे ॥ ७६ ॥

त्रैलोक्याऽधिपतित्वमेवविरसंयस्मिन्महाशासने
तल्लब्ध्वासनवस्त्रमानघटनेभोगेरतिंमाकृथाः॥
भोगःकोऽपिसएकएवपरमोनित्योदितोजृम्भतेयत्स्वा
दाद्विरसाभवन्तिविषयास्त्रैलोक्यराज्यादयः ॥ ७७ ॥

टीका—हे चित्त! जिस ब्रह्मज्ञानके आगे त्रिलोकीका राज्य निरस हो जाता है । उसको प्राप्त होकर भोजन वस्त्र और मानकेलिये भोगोंमें प्रीति मतकर, वही एक भोग सबसे श्रेष्ठ और नित्य उदित और प्रकाशित है । कि जिसके स्वादके साम्हने त्रिलोकीका राज्य आदि सब ऐश्वर्य फीके हो जाते हैं ॥ ७७ ॥

भक्तिर्भवेमरणजन्मभयंहृदिस्थंस्नेहोनबंधुषु न म
न्मथजाविकाराः ॥ संसर्ग दोष रहिताविजना
वनान्तावैराग्यमस्तिकिमतःपरमार्थनीयम् ॥ ७८ ॥

टीका–ईश्वरमें भक्ति हो। जन्म मरणका भय हृदयमें न हो। बंधुवर्गमें स्नेह न हो। कामदेवका विकार मनसे दूर हो। संसर्गदोषसे छूट जावे। निर्जन वनमें बैठे हों। इससे अधिक और क्या वैराग्य है? जो ईश्वरसे मांगने योग्य हो। अर्थात् इसीका नाम वैराग्य है॥७८॥

विषयोपहासः।

कृमयोभस्मविष्ठावानिष्ठायस्येयमीदृशी ॥
सकायःपरतापाययुज्यतामितिकोनयः ॥ ७९ ॥

टीका–जिस शरीरका परिणाम कीडे भस्म वा विष्ठा आदि होता है उस शरीरसे दूसरोंको संताप देना यह कौनसा न्याय है?॥७९॥

रक्तमांसमयःकायःस्त्रीणांस्पर्शसुखायनः ॥
तमेवाश्नन्तिसिंहाद्यारम्यंनास्तीहवस्तुतः ॥ ८० ॥

टीका–रक्त मांसके बनेहुए स्त्रीके शरीरको सुन्दर जानकर स्पर्श करके हमेंलोग सुख मानते हैं। और उसी शरीरको सिंह व्याघ्रादि भक्षण करजाते हैं। तो वास्तवमें रम्य नहीं है। क्यों कि यदि रम्य हो तो वे भक्षण क्यों करे? ॥ ८० ॥

अंगमंगेनसंपीड्यमांसंमांसेनतुस्त्रियः ॥
पुराऽहमभवं प्रीतोयत्तन्मोहविजृम्भणम् ॥ ८१ ॥

टीका–स्त्रीके अंगको अंगसे और मांसको मांससे दबाकर मुझको आनंद हुआ।ऐसा कहना तो मोहरूप पिशाचकी चेष्टाका फल है ॥८१॥

उत्तानोच्छूनमंडूकपाटितोदरसंनिभे ॥
क्लेदिनिस्त्रीव्रणेसक्तिरकृमेः कस्य जायते ॥ ८२ ॥

टीका–जैसे वर्षाकालमें मेंडक बहुत होजाते हैं। और मार्गमें इधर उधर दौडते फिरते हैं। और उनमेंसे कोई मेंडक किसी जीवके

पावके नीचे कुचला जाता है । और कुचलाजानेसे उसका पेट नीचेसे फट जाता है । और फिर वह मराहुआ मार्गके बीचमें ओंधा पडा रहता है । तो जो लक्षण उसके घावमें हैं । जैसी उसमें दुर्गंध आती है । और जैसा वह गद्गदा और चिकना होताहै । और जैसे उसमेंसे रक्त आदि बहता रहताहै । वे सब लक्षण स्त्रीकी योनीमें मिलते हैं । उसको देखकर जो आसक्त होता है । वे कीडे नहीं तो और क्या है ॥ ८२ ॥

अन्यत्रभीष्माद्गांगेयादन्यत्रचहनूमतः ॥
हरिणीखुरमात्रेण चर्मणा मोहितं जगत् ॥ ८३ ॥

टीका–शिवाय भीष्मजीके और सिवाय स्वामि कार्त्तिकजीके और शिवाय हनूमानजीके हरिणीके खुरमात्र स्त्रीकी योनीरूप चमडेसे सब जगत् मोहितहुआ । और होताहै ॥ ८३ ॥

चर्मखंडंद्विधाभिन्नमपानोद्गारधूपितम् ॥
येरमन्तिनरास्तत्रकृमितुल्याकथंनते ॥ ८४ ॥

टीका–योनीरूप चमडेका एकभाग दोनों औरसे फटाहुआहै । और सारे दिन उसको अपान वायु (अधोवायु) की उष्णताका धूप लगता रहताहै । ऐसी मूत्रकी मोरीसे प्रसन्न होहोकर रमण करनेवाले कीडोंके तुल्य क्यों नहीं हैं ? ॥ ८४ ॥

त्वङ्मांसरुधिरस्नायुमेदोमज्जाऽस्थिसंहतौ ॥
विण्मूत्रपूयेरमतांकृमीणांकियदन्तरम् ॥ ८५ ॥

टीका–चमडा मांस रुधिर नाडी मेद (चरबी) मज्जा हड्डी आदिके समूहसे बने शरीरमें जो योनीरूप मूत्रका खड्डाहै उस खड्डेसे प्रसन्न होकर रमनेवाले मनुष्योंमें और कीडोंमें क्या अंतर है ? ॥ ८५ ॥

लालांवाक्त्रसवंवेत्तिमांसपिंडौपयाधरौ ॥
मांसास्थिकूटंजघनंजनःकामग्रहातुरः ॥ ८६ ॥

टीका–कामरूप पिशाचसे पकडाहुआ मूर्खजन लालको वक्त्रासव जानताहै । मांसके लोंदेरूप स्तनोंको पयोधर कहताहै । मांस हड्डीसे बनेहुए अन्यथा आकारको जंघा कहताहै ॥ ८६ ॥

स्तनौमांसग्रन्थीकनककलशावित्युपमितौमुखं श्लेष्मागारंतदपिचशशांकेनतुलितम् ॥ स्रवन्मूत्रक्लिन्नंकरिवरकरस्पर्धिजघनमहोनिन्द्यंरूपंकविजनविशेषैर्गुरुकृतम् ॥ ८७ ॥

टीका–स्त्रियोंके स्तन मांसके लोंदे हैं । उनको स्वर्णकलशकी उपमा देतेहैं ॥ मुख थूक और खँकारका ठीकरा है । उसे चंद्रमाके समान बनाते हैं ॥ और टपकतेहुए मूत्रसे भीगी जांघोंको श्रेष्ठ हाथीकी शुंडकेतुल्य बनाते हैं । तो देखो कि स्त्रियोंके निन्दा योग्य रूपको कवियोंने कैसा बढायाहै ॥ ८७ ॥

समाश्लिष्यत्युच्चैर्घनपिशितपिंडंस्तनधियामुखं लालाक्लिन्नंपिबतिचषकंसासवमिव ॥ अमेध्यक्लेदार्द्रेपथिचरमतेस्पर्शरसिकोमहामोहान्धानांकिमिहरमणीयंनभवति ॥ ८८ ॥

टीका–मांसके पिंडोंको स्तनमानकर मर्दन करते हैं । जैसे मद्यके प्यालेको उठाकर मद्यपान करे वैसेही स्त्रीके मुखको चुंबनकरके उसकी लार पीते हैं । अपवित्र चिकने आर्द्र स्त्रीकी योनीरूप खड्डेसे रमण करते हैं और स्पर्शकरके रसिक बनते हैं महामोहसे अंधे मूर्खोंको संसारमें रमणीय क्या नहीं है? । अर्थात जो वे मूर्ख न होवें । तो ऐसी अपवित्र वस्तुओंको रमणीय क्यों माने? ॥ ८८ ॥

तृषाशुष्यत्यास्येपिबतिसलिलंस्वादुसुरभिक्षुधा-
र्त्तःसन्शालीन्कवलयतिशाकादिवलितान् ॥ प्र-
दीप्तेकामाग्नौसुदृढतरमाश्लिष्यतिवधूंप्रतीकारो
व्याधेः सुखमितिविपर्यस्यतिजनः ॥ ८८ ॥

टीका—जब मनुष्योंका कंठ प्याससे सूखने लगता है । तब शी-तल सुगंधित जल पीता है । जब भूख लगती है । तो शाक आदि सामग्रीके साथ चांवलोंके भोजन करताहै । जब कामदेवकी अग्नि प्रचंड होतीहै तो सुन्दर स्त्रीको हृदयसे लगाताहै । विचारो तो यह एक २ व्याधिकी औषधि है परंतु मनुष्योंने इसे उलटा सुखही मान रक्खा है ॥ ८९ ॥

आत्मपुराणे ।

नहिवैषयिकंनामसुखंकिंचनविद्यते ॥ किन्तुदुः-
खेहिविभ्रान्त्यासुखधीर्जायतेनृणाम् ॥ ८९ ॥
पुरुषाणांवधूनांचशरीरेकाऽपिनोभिदा ॥ चतु-
र्विंशतितत्वानांसमुदायःशरीरकम् ॥ ९० ॥ स-
र्वेषांहृदयेचाऽहमहंप्रत्ययशब्दयोः ॥ अनाधारः
सर्वगश्चिदानंदात्माव्यवस्थितः ॥ ९१ ॥ स्त्रीपुं-
सयोर्नयोगोऽपिसुखकारणमिष्यते ॥ रत्यन्तेति-
ष्ठतोरेवंसंतापाययतोभवेत् ॥ ९२ ॥ एवंव्यव-
स्थितेतत्त्वेकामग्रहवशंगताः ॥ पुरुषाश्चस्त्रिय-
श्चेतिकल्पयित्वापरस्परम् ॥ ९३ ॥ पिबन्तिला-
लांमुखजांमलांश्चैवादतेऽपिच ॥ स्तनयोश्च
स्फिजोर्नृणांनिर्लौम्नोनास्तिवैभिदा ॥ ९४ ॥

नहिमैथुनधर्मेणकामनाशःक्वचिद्भवेत् ॥ नहिकामे विनष्टेऽपिप्रवृत्तिस्तत्रदृश्यते ॥९५॥ किन्तुयावच्छ्रमंतत्रप्रवर्त्तन्तेपरस्परम् ॥ श्रान्ताऽपिविनिवर्त्तन्तेसुखंनैवाऽत्रकिंचन ॥ ९६ ॥ रेतसोनिर्गमेयावत्सुखंतावद्धिवर्त्तते ॥ विण्मूत्रयोर्विसर्गेऽपिततो नास्त्यधिकंपुनः ॥ ९७ ॥

टीका–आत्मपुराणमें लिखा है । कि विषयसे सुख नहीं है । किन्तु मूर्खतासे लोगोंने दुःखको सुख मान रक्खा है ॥ प्रथम यदि स्त्रीके शरीरसे सुख मानो । तो स्त्री और पुरुषोंके शरीरमें भेद नहीं क्योंकि चोवीस तत्त्वोंके समुदायसे सबके शरीर बनते हैं । और यदि स्त्रीहीके शरीरमें सुख माना जावे । तो उस स्त्रीके मर जानेपर उसी शरीरसे भय उत्पन्न होता है । तो इससे यह निश्चय हुआ । कि स्त्रीके शरीरमें तो सुख नहीं है । यदि कहो कि स्त्रीकी आत्मासे सुख है । तो आत्मा तो प्राणीमात्रकी एकसी है । तो फिर स्त्रीहीकी आत्मासे सुख कैसे हो सकता है ? ॥ अर्थात् यह सिद्ध हुआ कि, स्त्रीकी आत्मासेभी सुख नहीं । यदि कहो । कि स्त्री और पुरुषका एकान्तमें मिलाप होनेसे सुख होताहै । तो उनही स्त्री पुरुषोंका मैथुन करनेके पीछेभी एकान्तस्थानमें मिलाप रहता है । परन्तु सुख नहीं होता । किन्तु दोनोंको पश्चात्ताप होता है ॥ इससे यह सिद्ध हुआ । कि स्त्रीपुरुषके एकान्तके मिलापसे सुख नहीं ॥ यदि कहो । कि चुम्बनादिसे सुख होताहै । तो मुखकी लार पीनेमें क्या सुख है? ॥ और उसी थूकसे पीछे ग्लानि क्यों करते हैं? ॥ तो इससे यह सिद्ध हुआ । कि चुम्बनादिसेभी सुख नहीं है ॥ यदि कहो । कि स्तनमर्दनादिसे सुख होता है । तो मांसके पिंडोंको मर्दन करनेसे सुख क्योंकर होसकता है? ॥ और स्त्रीके स्तनोंमें

और पुरुषोंके कटिपृष्ठभागके मांसकी पुष्टता आदिमें क्या भेद है? कि जो उनहींको मर्दन करके सुख मानते हैं । इससे यह सिद्ध हुआ । कि स्तनमर्दनादिसे सुख नहीं । यदि कहो । कि मैथुनसे कामदेवरूपी रोगकी शान्ति होतीहै । तो यह नियम है । कि जिस रोगकी शान्ति होजाय वह रोग शरीरमें फिर नहीं होता तो जो कामदेवकी शान्ति होजाय । तो फिर मैथुनकी इच्छा क्यों होवे? ॥ तो इससे यह सिद्ध हुआ । कि मैथुनसे कामदेवकी शान्ति नहीं । किन्तु बहुत मैथुनसे उसका स्मरण बहुत रहताहै । और उस स्मरणसे "कामात्संजायते कामः" इत्यादि न्यायोक्त कामदेवरूपी रोगकी वृद्धिही होती है । यदि कहो । कि मैथुनसे इच्छाकी निवृत्ति होती है । तो वह निवृत्ति मैथुनसे नहीं होती । किन्तु वह निवृति तो मैथुनके परिश्रमसे थक जानेके कारण होती है । जब शरीरकी थकावट उतरजाती है । तो फिर इच्छा होती है । तो इससे यह निश्चय हुआ कि मैथुनसे निवृत्ति नहीं होती । किन्तु प्रवृत्तिही होती है ॥ यदि कहो । कि वीर्यके त्यागसे सुख होताहै । तो वह सुख विष्ठामूत्रके त्यागसेभी होताहै । उत् (बल्कि) विष्ठामूत्रके त्यागसे तो शरीर प्रफुल्लित और सुखी और आरोग्य होता है । और मनमें हर्ष होताहै । और वीर्यके त्यागसे तो शरीरमें मलीनता रोग निस्तेजता और पराक्रमकी हानि होतीहै । और मनको बड़ाभारी पश्चात्ताप होताहै । तो जिस वस्तुके त्यागसे पश्चात्ताप होवे । वह सुखदाता कैसे हुई?॥ अस्तु ॥ इत्यादि बोलोंसे यही सिद्ध होताहै । कि बिषयसे मलीनता पराक्रमकी हानि बुद्धिकी मंदता पश्चात्ताप और आयुःकी क्षीणताके सिवाय और कोई सुख नहीं है । किन्तु भ्रान्तिसे दुःखमें सुख मानते हैं ॥ ८९॥९०॥९१॥९२॥९३॥९४॥९५॥९६॥९७ ॥

सर्वाऽशुचिनिधानस्यकृतघ्नस्यविनाशिनः ॥
शरीरकस्यापिकृतेमूढाःपापानिकुर्वते ॥ ९८ ॥

टीका—संपूर्ण मलीनताओंके घर कृतघ्न (अर्थात् दूध पिला २ कर पुष्ट करनेपरभी यहांही (रहजानेवाला) और अनित्य ऐसे निन्दित शरीरकेलिये मूर्ख नानाप्रकारके पाप करते हैं ॥ ९८ ॥

दाराःपरिभवकारावंधुजनोबंधनंविषंविषयाः ॥
कोऽयंजनस्यमोहोयेरिपवस्तेषुसुहृदाशा ॥ ९९ ॥

टीका—स्त्रियां तो निरंतर अनादरकारक हैं । और भाई बंधु बंधन हैं । और विषय विष हैं । तो भी इस मनुष्यको क्या मोह होरहा है? कि जो शत्रु हैं । उन्हींसे अपने भलेकी आशा रखता है ९९॥

प्रादुर्भवन्तिवपुषःकतिनामकीटायान्यततःखलु तनोरपसारयन्ति ॥ मोहःकएषजगतोयदपत्यसंज्ञांतेषांविधायपरिशोषयतिस्वदेहम् ॥ १०० ॥

टीका—इस शरीरके विकार (पसीना विष्ठा मूत्रआदि) से कितनेही मत्कुण (खटमल) यूका (जूं) कीडे आदि उत्पन्न होते हैं । कि जिनके त्यागन करनेमें पूरा यत्न करते हैं ॥ और यह कैसा मोह है । कि वीर्यरूप विकारसे बनेहुए कीडेकी पुत्रसंज्ञा रखकर उसके पीछे अपना शरीर सुखा देतेहैं ॥ १०० ॥

श्रियोदोलालोलाविषयजरसाःप्रांतविरसाविपद्गेहंदेहंमहदापिधनंभूरिनिधनम् ॥ बृहच्छोकोलोकः सततमबलादुःखबहलास्तथाऽप्यस्मिन्घोरेपथि बतरताहन्तकुधियः ॥ १०१ ॥

टीका—यह लक्ष्मी तो दोलेकीभांति चंचल है । और विषयसे जायमान रसभी अन्तमें निरसहैं । और यह देहभी विपत्तिका घर है । धन बडा निधन है । यह लोकभी बडा शोकदाता है । ये स्त्री

यांभी दुःखकी नदी हैं । तो भीखेदका विषय है । कि इस घोर मार्गमें मूर्ख रत हो रहे हैं ॥ १०१ ॥

बालामामियमिच्छतीन्दुवदनासानंदमुद्वीक्षते
नीलेन्दीवरलोचनापृथुकुचोत्पीडंपरीरप्सते ॥
कात्वामिच्छतिकाचपश्यतिपशोमांसास्थिभि
र्निर्मितानारीवेदनर्किंचिदत्रसपुनःपश्यत्यमूर्त्तः
पुमान् ॥ १०२ ॥

टीका-वह स्त्री मेरी इच्छा करती है । मुझको आनंदयुक्त होकर देखती है । वह कमलके समान नेत्रवाली स्त्री मुझसे अपने कुचोंका मर्दन चहाती है । अरे पशु कौन तो तेरी इच्छा करती है? और कौन तुझको देखती है? यह मांस और हड्डियोंसे बनी हुई स्त्रीतो तुझको देखती है वा नहीं । परन्तु वह सर्वान्तर्यामी त्रिलोकीनाथ तो तुझको अवश्यही देखता है । अर्थात् उसीसे डर और उसीका स्मरण कर ॥ १०२ ॥

अनित्यतानिरूपणम् ।

संसाररात्रिदुःस्वप्नेशून्येदेहमयेभ्रमे ॥
आस्थांचेदनुबध्नामितन्मूर्खोनास्तिमत्परः ॥१०३॥

टीका-संसाररूपी रात्रिके दुःस्वप्नमें देहके झूंठे भ्रमसे जो मैं ऐसा कहता हूं । कि यह मैं हूं । और यह मेरा है । इत्यादि मोहसे बंधे हुए मुझसे अधिक मूर्ख कौन है? ॥ १०३ ॥

गलितानीन्द्रलक्षाणिबुद्बुदानीववारिणि ॥
मांजीवितनिबद्धाशंविहासिष्यन्तिसाधवः ॥ १०४ ॥

टीका–जैसे पानीके बुलबुले प्रगट होहोकर प्रलय हो जाते हैं। वैसेही लक्षों इन्द्र प्रलय होगये। और मैंने जो यह आशा कररक्खी है। कि अभीतो जीऊंगा। तो क्या मुझ ऐसी झूठी आशा करने वालेको साधु न हसेंगे? ॥ १०४ ॥

येषांनिमेषोन्मेषाभ्यांजगतांप्रलयोदयौ ॥
तादृशाःपुरुषायातामादृशांगणनैवका ॥ १०५ ॥

टीका–जिनके नेत्रके मूंदने और खोलनेसे जगत्का प्रलय और उदय होताथा। वैसे पुरुषभी चले गये। तो हमारे सरीखोंकी तो गिनतीही क्या है? ॥ १०५ ॥

एकेऽद्यप्रातरपरेपश्चादन्येपुनःपरे ॥
सर्वेनिःसीम्निसंसारेयान्तिकःकेनशोच्यते ॥ १०६ ॥

टीका–एक अभी कल दूसरे पीछे तीसरे फिर चोथे ऐसे सब इस अनित्य संसारमें चले जाते हैं। कौन किसका सोच करताहै॥ १०६॥

एतायाःप्रेक्षसेलक्ष्मीश्छत्रचामरचंचलाः ॥
स्वप्नएषमहाबुद्धेदिनानित्रीणिपंचवा ॥ १०७ ॥

टीका–हे बुद्धिमान् छत्रचामरादियुक्त जो यह चंचल लक्ष्मी तुझको दिखलाई देती है। सो स्वप्न है। और तीन वा पांच दिन की है। अर्थात् अनित्य है ॥ १०७ ॥

इदंयुगसहस्रस्यभविष्यदभवद्दिनम् ॥
तदप्यद्यत्वमापन्नंकाकथामरणावधेः ॥ १०८ ॥

टीका–यह जो संकल्पमें अद्य कहते हैं। सो युगसहस्रका भविष्यत् दिन हुआ है। तोभी उसे अद्य कहते हैं। तो मरणावधिकी तो क्या कथा है? ॥ १०८ ॥

पृथिवीदह्यतेयत्रमेरुश्चाऽपिविशीर्यते ॥
सुशोषंसागरजलंशरीरेतत्रकाकथा ॥ १०९ ॥

टीका-जिस संसारमें पृथ्वीभी एक दिन जल जायगी । मेरूपर्वतकाभी पत्ता न लगेगा । समुद्रका जलभी सूख जावेगा । वहां शरीरकी तो गतिही क्या? जो रहेगा ॥ १०९ ॥

गतेनाऽपिनसंबन्धीनसुखेनभविष्यता ॥
वर्त्तमानंक्षणातीतंसंगतिःकस्यकेनवा ॥ ११० ॥

टीका-जो सुख हमने भोगलिया है । उससे तो संबंधही क्या? और जो भविष्यत्में भोगेंगे । उससेभी कुछ संबंध नहीं ॥ और वर्त्तमान क्षण क्षण करके बीता जा रहा है । तो किसकी किससे संगति है? ॥ ११० ॥

नीलोत्पलाभनयनाःपरमप्रेमभूषणम् ॥
हासायैवविलासिन्यःक्षणभंगितयास्थिताः॥ १११ ॥

टीका-कमलके समान नेत्रवाली परम प्रेमकी आभूषण विलासवाली स्त्रियां क्षणभंगता (देखतेही देखते झट नष्ट होजाना) से नाटककी भांति हास्यहीके निमित्त हैं ॥ १११ ॥

येषुयेषुदृढंबद्धाभावनादृष्टवस्तुषु ॥ तानितानि
विनष्टानिदृष्टानिकिमिहोत्तमम् ॥ ११२ ॥

टीका-जिन जिन वस्तुओंको देखकर मैंने उनमें दृढ भावना बोधी । वे वे सब नष्टहुई देखी ॥ तो बतलाइये? इस संसारमें उत्तम क्याहै? ॥ ११२ ॥

लब्धास्त्यक्ताश्चसंसारेयावन्तोबान्धवास्त्वया ॥
नसन्तिखलुतावन्त्योगंगायामपिवालुकाः ॥११३॥

टीका–जितने भाई बंधुओंसे इस संसारमें तुझको संयोग और वियोग हुआहै। उतनी तो श्रीगंगाजीमें बालूकी कणिकाभी नहीं हैं ११३

आसन्नतामेतिमृत्युरायुर्यातिदिनेदिने ॥
आघातंनीयमानस्यवध्यस्येवपदेपदे ॥ ११४ ॥

टीका–जैसे वधिक(कसाई)वध्य (जिसपशुको माराचाहताहै) को वधस्थान (मारनेकी जगह) पर लेजाताहैं । और पदपदपर उसका मृत्यु समीप आताजाताहै । वैसेही तेरा मृत्युभी दिनदिन समीप आरहाहै । और आयु दिन २ घट रहीहै ॥ ११४ ॥

अव्यक्तादीनिभूतानिव्यक्तमध्यानिभारत ॥
अव्यक्तनिधनान्येवतत्रकापरिदेवना ॥ ११५ ॥

टीका–हे भारत! येप्राणी पहिले (आदिमें) प्रकाशित नहींथे । और अंतमेंभी प्रकाशित नहीं रहेंगे ॥ केवल मध्यमें प्रकाशित हो रहेहैं । उनकेलिये दुःख क्या करनाहै? ॥ ११५ ॥

एकसार्थप्रयातानांसर्वेषांतत्रगामिनाम् ॥
यद्येकस्त्वरितंयातस्तत्रकापरिदेवना ॥ ११६ ॥

टीका–एक सार्थताको जानेवाले और सब वहांही जानेवालोंमेंसे यदि एक पहिले चलागया। तो वहां दुःख क्यों करना चाहिये।११६।

सत्यंमनोरमारामाःसत्यंरम्याविभूतयः ॥
किन्तुमत्तांगनापांगभंगलोलंहिजीवितम् ॥ ११७ ॥

टीका–स्त्रियां अवश्य मनको हरण करती हैं ॥ और विभूतिभी रम्यहैं । परन्तु मतवाली स्त्रियोंके नेत्रोंसे टूटनेवाला यह जीवन चंचलहै । अर्थात् अनित्यहै ॥ ११७ ॥

मातापितृसहस्राणिपुत्रदारशतानिच ॥
तवानन्तानियातानिकस्यतेकस्यवाभवान्॥११८॥

टीका-तेरे अनंत सहस्र मातापिता होगये । और अनन्त सेंकडों स्त्रीपुत्रादि होगये । कौन तेरे ? और तू किसका ? ॥ ११८ ॥

सर्वेक्षयान्तानिचयाःपातनान्ताःसमुच्छ्रयाः ॥
संयोगाविप्रयोगान्तामरणान्तंहिजीवितम् ॥ ११९ ॥

टीका-जितने समूहहैं । वे सब एकदिन बिखरेंगे ॥ जो ऊंचेहैं । वेभी गिरेंगे ॥ जिनका संयोग हुआहै । उनका वियोग होवेगा ॥ जो जीते हैं । वे मरेंगे ॥ ११९ ॥

बिडालभक्षितेदुःखंयादृशंगृहकुक्कुटे ॥
नतादृङ्ममताशून्येकलविंकेऽथमूषके ॥ १२० ॥

टीका-घरमें कुकुट (मुर्गा) पालनेवालोंके घरमें रहनेवाले कुकुटको यदि बिल्ली खाजाय । और उससे उनको जो दुःख होताहै । वह दुःख उसी घरमें रहनेवाले चूहेको यदि बिल्ली पकड़ लेजाय तो नहीं होता ॥ १२० ॥

अन्तकःपर्यवस्थाताजन्मिनःसंततापदः ॥
इतित्याज्येभवेभव्योमुक्तावुत्तिष्ठतेजनः ॥ १२१ ॥

टीका-जन्म लेनेवालेकी आपदातो बनीही रहती है । और मृत्युभी अवश्य एक दिन आ पकडता है । यह संसार त्याज्य है । ऐसा बिचारकर चतुरपुरुष मुक्तिके साधनको कमर बांधते हैं ॥ १२१ ॥

न्यस्तंयथामूर्ध्निमुदात्तिमेषोयवाक्षतायंबलिकल्पितःसन् ॥ मृत्युंसमीपस्थितमप्यजानन्भुनक्तिमर्त्योविषयांस्तथैव ॥ १२२ ॥

टीका-जैसे मेष (मेंढा) को बलि चढानेवाले बलिदानके लिये लेजाते हैं । और उसके मस्तकपर यव (जो) अक्षत चढाते हैं ।

और वह पशु अपने मृत्युको समीप आया न जानकर मस्तकपरसे गिरेहुए अक्षतादिको हर्षयुक्त होकर खाता है । वैसेही ये मनुष्यभी मृत्युको अपने मस्तकपरही बैठा हुआ न समझकर नानाप्रकारके विषयोंको हर्षयुक्त होकर भोगते हैं ॥ १२२ ॥

यदस्माभिर्दृष्टंक्षणिकमभवत्स्वप्नमिवतत्कियन्तो भावाःस्युःस्मरणविषयादप्यवगताः ॥ अहो पश्यन्पश्यन्स्वजनमखिलंयान्तमनिशंहतव्रीडं चेतस्तदपिनभवेत्संगरहितम् ॥ १२३ ॥

टीका-जो हमने देखा । वह स्वप्नकीभाँति क्षणिक होगया । और कितनीही बातोंको हम देखदेखकर भूलभी गये हैं देखते देखते कितनेही अपने लोग चले गये । और जा रहे हैं । तोभी यह निर्लज्ज मन संगरहित नहीं होना चाहता॥ अर्थात् मोहको नहीं छोडता॥ १२३॥

वयंयेभ्योजाताश्चिरपरिगताएवखलुतेसमंयैःसंवृद्धाःस्मृतिविषयतांतेऽपिगमिताः ॥ इदानीमेते स्मःप्रतिदिवसमासन्नपतनाद्गतास्तुल्यावस्थांसिकतिलनदीतीरतरुभिः ॥ १२४ ॥

टीका-जिनकेसाथ हमारा जन्म हुआ था । उनकोतो गये बहुत दिन बीते ॥ फिर जिनकेसाथ हम बडे हुए ॥ उनकाभी केवल स्मरणही रह गया । अर्थात् वेभी मरगये । अब हमभी दिन दिन गिरते जाते हैं । वालुकावाली नदीकी तीरके वृक्षकी दशाको प्राप्त हो रहे हैं ॥ १२४ ॥

अहमिहकृतविद्योवेदितासत्कलानांधनपतिरहमेकोरूपलावण्ययुक्तः ॥ इतिकृतगुणगर्वःखिद्यते किंजनोऽयंकतिपयदिनमध्येसर्वमेतन्नकिंचित् १२५

टीका-मैंने अच्छी विद्या पढी है । कलाओंकी कौशलतामें मैं बडा निपुण हूं ॥ मैं बडा धनवान् हूं । वा बडा रूपवान् हूं ॥ ऐसे मानकर गुणोंसे गर्वित होकर ये लोग क्यों व्यर्थ खेद पारहे हैं? थोडे दिनोंमें इनमेंसे कुछभी न रहेगा ॥ १२५ ॥

मित्रंकलत्रमितरःपरिवारलोकोभोगैकसाधनमिमाःकिलसंपदोनः ॥ एकःक्षणःसतुभविष्यतियत्रभूयोनाऽयंनयूयमितरेनवयंनचैते ॥ १२६ ॥

टीका-मित्र स्त्री और दूसरे ये सब परिवारके लोग हैं । और ये सम्पूर्ण संपदा भोगोंके साधनके लिये हैं।एक घडी वह आवेगी । कि जब वह तुम और दूसरे और हम और ये कोईभी न रहेंगे ॥१२६॥

चेतोहरायुवतयःस्वजनोऽनुकूलःसद्बान्धवाःप्रणतिगर्भगिरश्चभृत्याः ॥ गर्जन्तिदन्तिनिवहास्तरलास्तुरंगाःसंमीलनेनयनयोर्नहिकिंचिदस्ति १२७॥

टीका-ये चित्त हरनेवाली सुन्दर२ स्त्रियाँ यह अनुकूल कुटुंब ये सज्जन भाई बन्धु ये चतुर नौकर ये घूमतेहुए हाथी ये हींसते हुए घोडे जब तू नेत्र मुंदलेगा । तो सबके सब यहांही रह जावेंगे ॥१२७॥

अष्टकुलाचलसप्तसमुद्राब्रह्मपुरन्दरदिनकररुद्राः ॥ नत्वंनाऽहंनाऽयंलोकस्तदपिकिमर्थंक्रियतेशोकः ॥

टीका-आठों कुलाचल सातों समुद्र ब्रह्मा इन्द्र सूर्य रुद्र आदि एक दिन न रहेंगे । और मैं और तूभी न रहेंगे । फिर क्यों शोक करताहै? ॥ १२८ ॥

नलिनीदलगतजलमतितरलंतद्वज्जीवितमतिशयचपलम् ॥ विद्धिव्याधिव्यालग्रस्तंलोकंशोकहतंचसमस्तम् ॥ १२९ ॥

टीका-कमलके पत्तेपर पडी हुई जलकी बूंदकी भांति जीवनको अतिचपल जानिये । और इस संपूर्ण लोकको व्याधि (रोग) रूपी सर्पसे ग्रस्त और शोकसे मनोभंग हुआ मानिये ॥ १२९ ॥

क्षिपसिशुकंवृषदंशकरदनेमृगमर्पयसिमृगादनवदने ॥ वितरसितुरगंमहिषविषाणेविदधच्चेतोभोगविताने ॥ १३० ॥

टीका-वह तोतेको पकड़कर बिल्लीके मूंहमें डालता है । और हरिणको सिंहके मुखमें अर्पण करताहै । और घोडेको भैंसेके सींगों पर पटकता है । जो चित्तको विषयादि जालमें फँसाताहै ॥ १३० ॥

मरणंप्रकृतिःशरीरिणांविकृतिर्जीवनमुच्यतेबुधैः ॥ क्षणमप्यवतिष्ठतेश्वसन्यदिजन्तुर्ननुलाभवानसौ ॥ १३१ ॥

टीका-मरना यह तो शरीरकी प्रकृतिहीहै । और जीना यह तो मानी हुई विकृति है । सोश्वास लेता हुआ यही क्षणभरभी जीताहै । तो जानिये । यह बडा लाभवान् है ॥ १३१ ॥

हरिष्यमाणोबहुधापरस्वंकरिष्यमाणःसुतसंपदादि ॥ धरिष्यमाणोऽरिशिरःसुपादंनस्वंमरिष्यन्तमवैतिकोऽपि ॥ १३२ ॥

टीका-परधन हरण करकरके सुत संपदादि बढानेकी इच्छावाले शत्रुओंके मस्तक उडानेकी इच्छा रखनेवाले दिनपर दिन निकट आतेहुए अपने मृत्युको नहीं जानते ॥ १३२ ॥

नन्दन्तिमन्दाःश्रियमप्यनित्यंपरंविषीदन्तिविपद्गृहीताः ॥ विवेकदृष्ट्याचरतांनराणांश्रियोनकिंचिद्विपदोनकिंचित् ॥ १३३ ॥

टीका—लक्ष्मीको पाकर मूर्ख बडा हर्ष मानते हैं॥ विपद आजाने-पर रोते हैं। विवेकदृष्टिसे विचरनेवाले महात्माओंको न कभी हर्ष होता है। और न कभी विषाद होताहै ॥ १३३ ॥

रम्यंहर्म्यतलंनकिंवसतयेश्राव्यंनगेयादिकंकिंवा
प्राणसमासमागमसुखंनैवाऽधिकंप्रीतये ॥ किंतू
द्भ्रान्तपतत्पतंगपवनव्यालोलदीपांकुरच्छायाचं
चलमाकलय्यसकलंसन्तोवनान्तंगताः ॥ १३४ ॥

टीका—महात्माओंके निवासके लिये क्या महल नथा? और सुनने-के योग्य क्या उत्तम रगाना नथा? और क्या अधिक प्रीति करनेवाला प्राण प्यारी स्त्रीका सुख नथा? अर्थात् यह सबथा। तोभी संतजन इस सकल जीव लोकको हिलतेहुए दीपककी छायामें भ्रमते हुए मूर्ख पतंगके समान चंचल (मरणके सन्मुख) देखकर बनमें चले गये ॥ १३४ ॥

आयुर्वर्षशतंनृणांपरिमितंरात्रौतदर्धंगतंतस्याऽ
र्द्धस्यपरस्यचाऽर्द्धमपरंबालत्ववृद्धत्वयोः ॥ शेषं
व्याधिवियोगदुःखसहितंसेवादिभिर्नीयतेजीवेवा
रितरंगचंचलतरेसौख्यंकुतःप्राणिनाम् ॥ १३५ ॥

टीका—प्रथम तो मनुष्यकी आयुष्यहीका सौ वर्षका प्रमाण है। उसमेंसे आधी पचास वर्ष सोनेहीमें रात्रिको व्यतीत होतीहै। शेष अर्थात् पचास वर्षके तीन भाग करो। उन भागोंमेंसे प्रथम भाग तो बालपनकी अज्ञानतामें जाता है। और दूसरा वृद्धा (जरा) अवस्था-में जाता है। और तीसरा अंश जो युवा अवस्थाका बचा। सो व्याधि वियोग दुःख पराई सेवा कलह हर्ष शोक हानि लाभ आदि नानाक्लेशोंमें व्यर्थ व्यतीत होता है। यदि सौवर्षपर्यन्त जीवन हो।

तो भी लेखा (हिसाब) से सुखका दिन एकभी नहीं निकलता ॥ यह तो जलतरंगके समान जीवन है । इसमें प्राणियोंको सुख कहांसे प्राप्त होगा? ॥ १३५ ॥

भूत्वाकल्पशतायुषोऽण्डजभुवःसेन्द्रश्चदेवासुरा
मन्वाद्यामुनयोमहीजलधयोनष्टाःपराःकोटयः ॥
मोहःकोऽयमहोमहानुदयतेलोकस्यशोकावहोव
न्धोफेनसमेगतेवपुषियत्पंचात्मकेपंचताम् ॥१३६॥

टीका—सौकल्पोंकी आयुष्यवाले ब्रह्माजी और इन्द्र और देवता राक्षस मन्वादि मुनि लोग पृथ्वी समुद्र आदि करोडों बेर नष्टहो चुके हैं । तो फिर लोगोंको यह दुःखदाता मोह क्यों होजाताहै? जो फेनके समान चंचल और पंचतत्त्वोंसे बनेहुए कच्चे शरीरमें पंचता मानते हैं । अर्थात् ऐसे क्षुद्र अनित्य शरीरको अपना समझते हैं ॥ १३६ ॥

आधिव्याधिशतैर्जनस्यविविधैरारोग्यमुन्मूल्यते
लक्ष्मीर्यत्रपतन्तितत्रविवृतद्वाराइवव्यापदः ॥
जातंजातमवश्यमाशुविवशंमृत्युःकरोत्यात्मसा
त्तत्किंनामनिरंकुशेनविधिनायन्निर्मितंसुस्थितम् १३७

टीका—सैंकडों मानसिक दैहिक रोग व्याधियोंने मनुष्यकी आरोग्यताको जड मूलसे उखाड डालीहै । जहां द्रव्य बहुत होताहै । वहां दुःखद्वार तोडकर आपडताहै । जोजो जन्मताहै । उसे मृत्यु बलात्कारसे अवश्य वशकर लेताहै । वह ऐसी कौन वस्तु है? जिसे निरंकुश विधाताने स्थिर बनाई हो ॥ १३७ ॥

भोगामेघवितानमध्यविलसत्सौदामिनीचंचला
आयुर्वायुविघट्टिताऽभ्रपटलीलीनांबुवद्भंगुरम् ॥

लोलायौवनलालनातनुभृतामित्याकलय्यद्रुतंयो-
गेधैर्यसमाधिसिद्धिसुलभेबुद्धिंविधध्वंबुधाः ॥१३७॥

टीका-हे पंडितो विस्तृत मेघमें चमकती हुई बिजलीके समान देहधारियोंका भोग चंचल है । वायुसे छिन्न भिन्न मेघ जलके सदृश आयुष्य नाशवान् है । और यौवनका उमंगभी स्थिर नहीं । ऐसा समझकर धैर्य समाधिकी सिद्धिसे सुलभ जो योगहै । उसमें अपनी बुद्धिको लगाओ ॥ १३७ ॥

साक्षात्प्रेमावतारःकमलदलदृशोदिक्षुलक्ष्मीरनं
तासत्पुत्राःसन्तिमित्राण्यपिविषमविपत्संविभा
गीकुटुम्बः ॥ एतत्सर्वंहितावत्सुकृतविलसितं
दृश्यमानंमनोज्ञंयच्चैतत्क्षिप्रनाशप्रणयिबतमना
ङ्म्लायतेतेनचेतः॥ १३८ ॥

टीका-आप साक्षात् प्रेमका अवतारहै । कमलके समान नेत्रवाली स्त्रियांभी हैं । दिशाओंमें अनन्त लक्ष्मीहै । पुत्र कहना माननेवाले हैं । मित्रभी अच्छे हैं । विपदाके समयमें दुःख बटानेवाला कुटुम्ब भी है । ये सब तबहीतक सुन्दर दिखाई देते हैं । कि जबतक इनकी अनित्यताकी प्रतीति नहो । इनकी अनित्यताका स्मरण होनेसे तो चित्त मलीन होजाताहै ॥ १३८ ॥

यदामेरुःश्रीमान्निपततियुगान्ताऽग्निनिहतःसमु
द्राःशुष्यन्तिप्रचुरनिकरग्राहनिलयाः ॥ धराग
च्छत्यन्तंधरणिधरपादैरपिधृताशरीरेकावार्त्ताक
रिकलभकर्णाग्रचपले॥ १३९ ॥

टीका-जब प्रलयकालकी अग्निका मारा श्रीमान् मेरुपर्वत गिर-पडताहै । और बडे२ मगर और ग्राहोंके स्थान समुद्र सूख जाते हैं । और पर्वतोंके पदसे दबीहुई पृथ्वीभी नाश होजातीहै । तब हाथीके बच्चोंके कानकी कोरके समान चंचल मनुष्य शरीरकी क्या गणना है ? ॥ १३९ ॥

आयुःकल्लोललोलंकतिपयदिवसस्थायिनीयौवन
श्रीरर्थाःसंकल्पकल्पाघनसमयतडिद्विभ्रमाभोग
पूराः ॥ कण्ठाश्लेषोपगूढंतदपिचनचिरंयत्प्रिया
भिः प्रणीतंब्रह्मण्यासक्तचित्ताभवतभवभयाम्भो
धिपारंतरीतुम् ॥ १४० ॥

टीका-आयुष्य जल-तरंगके समान चंचलहै । यौवन अवस्थाकी शोभा अल्पकाल रहनेवाली है । धन-मनके संकल्पसेभी क्षणिक है । भोगके समूह वर्षाकालके मेघकी बिजलीकी भांति चंचल हैं । और प्यारी स्त्रीको गलेसे लगाना बहुत दिन स्थिर नहीं रहता । इ-सीलिये संसारके भयरूपी समुद्रके पार होनेके लिये ब्रह्ममें चित्तको लगाओ ॥ १४० ॥

रम्याश्चन्द्रमरीचयस्तृणवतीरम्यावनान्तस्थलीर
म्यःसाधुसमागमःशमसुखंकाव्येषुरम्याःकथाः ॥
कोपोपाहितबाष्पबिन्दुतरलंरम्यंप्रियायामुखंसर्वं
रम्यमनित्यतामुपगतेचित्तेनकिंचित्पुनः ॥ १४१ ॥

टीका-चंद्रमाकी किरणें सुन्दर लगतींथीं । हरित तृणवाली बन-भूमि सुहावनी देख पडतीथी । मित्रोंका समागम अच्छा लगता-था । शृंगाररसवाली काव्यकथा प्यारी जान पडतीथी ॥ क्रोधके आंसुओंकी बूंदसे चंचल और मनभावन प्यारीका मुख सुन्दर लग-

ताथा । पर जब संसारकी अनित्यता निश्चित हुई । तब चित्तमेंसे सब रमणीयता जातीरही ॥ १४१ ॥

अमीषांजन्तूनांकतिपयनिमेषस्थितिजुषांवियो
गेधीराणांकइहपरितापस्यविषयः ॥ क्षणादुत्पद्य
न्तेविलयमपियान्तिक्षणममीनकेऽपिस्थातारःसु
रगि...

टीका— ... के वि-
योगका दुः... ते हैं ।
और नष्ट ... सदा
तो देवता ...

निःस्व...
क्षेशःक्षि...
चक्रेशः...
ह्माविष्ण... ४३॥

टीका—... रुप-
ये चहताहै ... क्ष रु-
पयेवाला रा... । च-
क्रवर्त्ती इन्द्र... वीकों
चाहता है । ... । तृ-
ष्णारूपी स्व...

उत्स्वा...
निस्तीर्णःसारितांपातिनृपतयोयत्नेनसंतोषिताः ॥

टीका–जब प्रलयकालकी अग्निका मारा श्रीमान् मेरुपर्वत गिर-पडताहै । और बडे२ मगर और ग्राहोंके स्थान समुद्र सूख जाते हैं। और पर्वतोंके पदसे दबीहुई पृथ्वीभी नाश होजातीहै । तब हाथीके बच्चोंके कानकी कोरके समान चंचल मनुष्य शरीरकी क्या

यिनीयौवन
द्भ्रमाभोग
चिरंयत्प्रिया
वभयाम्भो

यौवन अवस्थाकी
पसेभी क्षणिक है ।
चंचल हैं । और
हीं रहता । इ-
ठये ब्रह्ममें चित्तको

न्तस्थलीर
याःकथाः॥
यामुखंसर्वं
ुनः॥१४१॥

टीका–चन्द्रमाकी किरण सुन्दर लगतीथी । हरित तृणवाली बन-भूमि सुहावनी देख पडतीथी । मित्रोंका समागम अच्छा लगता-था । शृंगाररसवाली काव्यकथा प्यारी जान पडतीथी ॥ क्रोधके आंसुओंकी बूंदसे चंचल और मनभावन प्यारीका मुख सुन्दर लग-

ताथा। पर जब संसारकी अनित्यता निश्चित हुई। तब चित्तमेंसे सब रमणीयता जातीरही ॥ १४१ ॥

अमीषांजन्तूनांकतिपयनिमेषस्थितिजुषांवियो
गेधीराणांकइहपरितापस्यविषयः॥ क्षणादुत्पद्य
न्तेविलयमपियान्तिक्षणममीनकेऽपिस्थातारः सु
रगिरिपयोधिःप्रभृतयः ॥ १४२ ॥

टीका–धीरपुरुष गिनेहुए निमेषमात्रतक जीनेवाले जीवोंके वियोगका दुःख नहीं मानते ॥ क्योंकि वे क्षणमें तो उत्पन्न होते हैं। और नष्ट होनेमेंभी क्षणसे अधिक समय नहीं लगता ॥ और सदा तो देवता पर्वत समुद्र आदिभी स्थित नहीं रहेंगे ॥ १४२ ॥

तृष्णानिन्दा

निःस्वोवष्टिशतंशतीदशशतंलक्षंसहस्राऽधिपोल
क्षेशःक्षितिराजतांक्षितिपतिश्चक्रेशतांवांछति ॥
चक्रेशः सुरराजतांसुरपतिर्ब्रह्मास्पदंवांछतिब्र-
ह्माविष्णुपदंहरिःशिवपदंतृष्णाऽवधिंकोगतः ॥१४३॥

टीका–निर्धन सौ रुपये चहाता है। सौ रुपयेवाला हजार रुपये चहताहै। हजारवाला लक्ष रुपयोंकी इच्छा करताहै। लक्ष रुपयेवाला राजा बना चाहताहै। राजा चक्रवर्त्ती होना चाहताहै। चक्रवर्त्ती इन्द्र पदकी अभिलाषा करता है। इन्द्र ब्रह्माकी पदवीको चाहता है। ब्रह्मा विष्णुके और विष्णु शिवके पदको चहाते हैं। तृष्णारूपी समुद्रके पार कौन निकला? ॥ १४३ ॥

उत्खातंनिधिशंकयाक्षितितलंध्मातागिरेर्धातवो
निस्तीर्णःसरितांपतिर्नृपतयोयत्नेनसंतोषिताः ॥

मंत्राराधनतत्परेणमनसानीताःश्मशानेनिशाः
प्राप्तःकाणवराटकोऽपिनमयातृष्णेऽधुनामुंचमाम् ॥

टीका—द्रव्य मिलनेकी आशासे मैं भूमि खोदता फिरा। रसायन सिद्धि होनेके लिये पर्वतकी अनेक धातुओंको फूंक डालीं। देशान्तरसे धन वा रत्न प्राप्तिकेलिये समुद्र मथडाला॥ और बडे प्रयत्नसे राजाओंकोभी प्रसन्न किये। और मंत्रसिद्धिके लिये मन लगाकर कई रातोंको महाश्मशानमें बैठे २ बिताई। परंतु यथार्थ तो मेरे एक फूटी कौडीभी हाथ नहीं आई। हे तृष्णा अब तो मेरा पीछा छोड॥ १४४ ॥

वलिभिर्मुखमाक्रान्तंपलितैरंकितंशिरः॥
गात्राणिशिथिलायन्तेतृष्णैकातरुणायते ॥ १४५ ॥

टीका—मुखके चमडे सिकुडगये। मस्तकके बाल धवल होगये। और सब अंग शिथिल होगये। पर एक तृष्णाही तरुण होती जातीहै ॥ १४५ ॥

च्युतादन्ताःसिताःकेशादृङ्निरोधःपदेपदे ॥
पातसज्जमिमंदेहंतृष्णासाध्वीनमुंचति ॥ १४६ ॥

टीका—दांत गिरपडे। केश धवल होगये। दृष्टी मंद पडगई। देह भी पडनेको उपस्थित है। तथाऽपि यह तृष्णा नहीं छोडती॥ १४६॥

भ्रान्तंदेशमनेकदुर्गविषमंप्राप्तंनकिंचित्फलंत्य
क्त्वाजातिकुलाऽभिमानमुचितंसेवाकृतानिष्फ
ला॥ भुक्तंमानविवर्जितंपरगृहेसाशंकयाकाकव
त्तृष्णेदुर्मतिपापकर्मनिरतेनाद्याऽपिसंतुष्यसि १४७॥

टीका—दुर्गम अनेक देशोंमें भ्रमण किया । पर कुछ फल प्राप्त न हुआ । जाति और कुलका अभिमान त्यागकर पराई सेवा-की । सोभी निष्फल हुई । अपमानसे काकके समान सशंकित पर घर भोजनभी करता रहा । हे पापकर्मरत तृष्णा दुर्मति तू अब भी संतोष नहीं पकडती ॥ १४७ ॥

यौवनंजरयाग्रस्तमारोग्यंव्याधिभिर्हतम् ॥
जीवितंमृत्युरभ्येतितृष्णैकानिरुपद्रवा ॥ १४८ ॥

टीका—यौवन अवस्था जरा अवस्थासे ग्रस्तहै । आरोग्यता व्याधियोंसे ग्रस्तहै, जीवन मृत्युसे ग्रस्तहै । परंतु यह तृष्णा तो निरुपद्रव है ॥ १४८ ॥

खलोल्लापाःसोढाःकथमपितदाराधनपरैर्निगृह्या
न्तर्बाष्पंहसितमपिशून्येनमनसा॥ कृताश्चित्तस्त
म्भःप्रहसितधियामंजलिरपित्वमाशेमोघाशेकिम
परमतोनर्त्तयसिमाम् ॥ १४९ ॥

टीका—खलोंकी सेवा करनेमें मैंने उनके कुतर्कके वाक्य सहे । आंसूको रोककर उनके साम्हने मन उदासरहने परभी हँसा । चित्त स्थिर करके उन हंसनेवालोंके साम्हने हाथभी जोडे । हे व्यर्थ आ-शा करनेवाली तृष्णा अब इससेभी अधिक क्या नचाती है ? ॥ १४९ ॥

वपुःकुब्जीभूतंगतिरपितथायष्टिशरणाविशीर्णा
दन्तालिःश्रवणविकलंश्रोत्रयुगलम् ॥ शिरःशुक्लं
चक्षुस्तिमिरपटलैरावृतमहोमनोमेनिर्लज्जंतदपि
विषयेभ्यःस्पृहयति ॥ १५० ॥

टीका—शरीर कुबडा होगया । लकडीके सहारेसे चलते हैं । दांत गिर पडे । कानोंसे सुनाई नहीं देता । मस्तक शुक्ल होगया । नेत्रोंसे दिखाई नहीं देता । तथापि यह निर्लज्ज मन नाना प्रकारके विषयोंहीकी इच्छा रखताहै ॥ १५० ॥

भिक्षाशनंतदपिनीरसमेकवारंशय्याचभूःपरिजनोनिजदेहमात्रम् ॥ वस्त्रंचजीर्णशतखंडमलीनकन्थाहाहातथाऽपिविषयानपरित्यजन्ति॥ १५१ ॥

टीका—भिक्षाका मांगा हुआ नीरस अन्न एकहीबेर खानेको मिलताहै । भूमिहीपर सोते हैं । कुटुंबभी उनका देहही मात्रहै । पुराने वस्त्रोंके सैकडों टुकडेकी गोदडी पहिने ऐसी दशामें प्राप्त हैं । तोभी बडा आश्चर्य है। कि उन्हें विषय वासना परित्याग नहीं करती॥ १५१॥

अंगंगलितंपलितंमुंडंदशनविहीनंजातंतुंडम् ॥
वृद्धोयातिगृहीत्वादंडंतदपिनमुंचत्याशापिंडम् १५२

टीका—शरीरके चमडे लटक गये हैं । मस्तक हिलताहै । मुखमें दांत नहीं हैं । वृद्ध है । लकडीकी सहायतासे चलता है । तोभी आशा नहीं छोडता ॥ १५२ ॥

आशानाममनुष्याणांकाचिदाश्चर्यशृंखला ॥
ययाबद्धाःप्रधावन्तिमुक्तास्तिष्ठन्तिपंगुवत् ॥१५३॥

टीका—आशारूपी एक आश्चर्यकारक मनुष्योंके लिये शृंखला (जंजीर) है । कि जिससे बंधाहुआ मनुष्य दौडता फिरता है । और छूटाहुआ पंगुकी भांति स्थित रहताहै ॥ १५३ ॥

यच्चकामसुखंलोकेयच्चदिव्यंमहत्सुखम् ॥
तृष्णाक्षयसुखस्यैतेनार्हतःषोडशींकलाम् ॥१५४॥

टीका–संसारमें लोग जिसको कामसुख कहते हैं । और धनादि प्राप्तिसे जिसको दिव्य सुख कहते हैं । वे सब सुख तृष्णा छोडदेनेसे जो सुख होताहै । उसकी सोलहवीं कलाकोभी नहीं पासकते ॥ १५४ ॥

आशायायेदासास्तेदासाःसर्वस्यलोकस्य ॥
आशायेषांदासीतेषांदासायतेलोकः ॥ १५५ ॥

टीका–जो आशाके दास हैं । वे संपूर्ण लोकके दास हैं । और आशा जिनकी दासी है । उनका सम्पूर्ण लोक दास है ॥ १५५ ॥

तृष्णांचेहपरित्यज्यकोदरिद्रःकईश्वरः ॥
तस्याश्चेत्प्रसरोदत्तोदास्यंचशिरसिस्थितम् ॥१५६॥

टीका– जो तृष्णाको नहीं छोडते । उनके मस्तकपर दासत्व आ बैठता है । अर्थात् उनको दूसरोंके दास बनना पडता है । जो तृष्णाको छोडदेते हैं । उनके साम्हने कौन दरिद्री और कौन धनीहै? १५६

कालचरितम् ।

भगीरथाद्याःसगरःककुत्स्थोदशाननोराघवलक्ष्मणौच ॥ युधिष्ठिराद्याश्चबभूवुरेतेसत्यंक्कयाताबततेनरेन्द्राः ॥ १५७ ॥

टीका–भगीरथादि सगर ककुत्स्थ रावण राम लक्ष्मण युधिष्ठिरादि कैसे कैसे प्रतापी राजाहुए । सत्य बतलाइये । कि वे सब कहाँ चलेगये? ॥ १५७ ॥

प्राप्ताजरायौवनमप्यतीतंबुधायतध्वंपरमार्थसि-

द्धचै ॥ आयुर्गतप्रायमिदंयतोऽसौविश्राम्यविश्राम्यनयातिकालः ॥ १५८ ॥

टीका–यह आयुः प्रायः बीत गई । वृद्धाअवस्था समीप आई । यौवन व्यतीत हुआ । इसलिये चाहिये । कि परमार्थकी सिद्धिके लिये यत्न करे क्योंकि काल विश्राम ले लेकर नहीं आता । अर्थात् अचानक आ पकडेगा ॥ १५८ ॥

अशनंमेवसनंमेजायामेबंधुवर्गोमे ॥
इतिमेमेकुर्वाणंकालवृकोहन्तिपुरुषाऽजम् ॥१५९॥

टीका–यह भोजन मेरे लिये है । ये वस्त्र मेरे हैं । यह स्त्री मेरी है । यह कुटुम्ब मेरा है । इस प्रकार मेरा मेरा करते हुए पुरुषरूप बकरेको कालरूप भेडियाँ धर दबाता है ॥ १५९ ॥

म्रियमाणंमृतंबंधुंशोचन्तेपरदेविनः ॥
आत्मानंनानुशोचन्तिकालेनकवलीकृताः ॥१६०॥

टीका–कालसे ग्रसित पुरुष मरनेवाले वा मरेहुए भाई बंधुओंकी चिन्ता करते हैं । परन्तु आपभी एक दिन मरजावेंगे । इसका थोडाभी बिचार नहीं करते ॥ १६० ॥

अद्यैवहसितंगीतंपठितंयैःशरीरिभिः ॥
अद्यैवतेनदृश्यन्तेकष्टंकालस्यचेष्टितम् ॥ १६१ ॥

टीका–अभी हँसरहेथे । अभी गारहेथे । अभी पढरहेथे । वे अभी नहीं दिखाई देते । काल तो बडा विचित्र है ॥ १६१ ॥

पुरन्दरसहस्राणिचक्रवर्त्तिशतानिच ॥
निर्वापितानिकालेनप्रदीपाइववायुना ॥ १६२ ॥

टीका—हजारों इन्द्र और सैकडों चक्रवर्त्ती राजारूप दीपक इस काल रूप वायुने बुझा दिये ॥ १६२ ॥

मातुलोयस्यगोविन्दःपितायस्यधनंजयः ॥
सोऽपिकालवशंप्राप्तःकालोहिदुरतिक्रमः ॥ १६३ ॥

टीका—जिसके मामा तो साक्षात् श्रीकृष्ण और पिता साक्षात् अर्जुन । उस अभिमन्युकोभी दोनोंके देखते देखतेही काल खागया । कालबडा दुरतिक्रमहै ॥ १६३ ॥

ब्रह्माविष्णुदिनेयातिविष्णूरुद्रस्यवासरे ॥
ईश्वरस्यतथासोऽपिकःकालंलंघितुंक्षमः ॥ १६४ ॥

टीका—ब्रह्मा विष्णुके दिनमें जाताहै । विष्णु रुद्रके दिनमें और रुद्र ईश्वरके दिनमें चला जाताहै । कालको उल्लंघन करनेकी किसकी सामर्थ है? ॥ १६४ ॥

आराध्यभूपतिमवाप्यततोधनानिभुंजामहेवयमि
हप्रसभंसुखानि ॥ इत्याशयावतविमोहितमान
सानांकालोजगाममरणाऽवधिरेवपुंसाम् ॥ १६५ ॥

टीका—हम राजाओंको प्रसन्न करके धन इकट्ठा करेंगे । उस धनसे सुख भोगेंगे । जो ऐसी आशाहीसे मोहित होरहे हैं । उनको ऐसे विचार करते २ ही एकदिन काल आ पकडता है ॥ १६५ ॥

भ्रातःकष्टमहोमहान्सनृपतिःसामन्तचक्रंचतत्पा-
र्श्वेतस्यचसाऽपिराजपरिषत्ताश्चन्द्रबिम्बाननाः ॥
उद्रिक्तःसचराजपुत्रनिवहस्तेबन्दिनस्ताःकथाः
सर्वंयस्यवशादगात्स्मृतिपदंकालायतस्मैनमः १६६

टीका–हेभाई! बडा आश्चर्य है । देखिये पहिले यहां कैसी सुन्दर नगरीथी । उसका राजा कैसा अच्छाथा । और राज्य उसका कैसा दूरतक फैलगयाथा । उसके निकट सभा कैसी होतीथी । और चन्द्र मुखी स्त्रियां कैसी २ शोभायमानथीं । और उसके राजपुत्रोंका समूह कैसा प्रबलथा । वे बन्दीगण कैसेथे । और कैसी अच्छी कथा कहतेथे । अब वे सब जिस कालके वश होकर लुप्त होगये । उसी कालको नमस्कारहै ॥ १६६ ॥

यत्राऽनेकःक्वचिदपिगृहेतत्रातिष्ठत्यथैकोयत्राऽप्ये
कस्तदनुबहवस्तत्रचान्तेनचैकः ॥ इत्थंचेमौर
जनिंदिवसौदोलयन्द्वाविवाक्षौकालःकाल्यासह
बहुकलःक्रीडतिप्राणिसारैः ॥ १६७ ॥

टीका–जिस घरमें अनेकथे । वहां एक देख पडताहै । और जहां एकथा । वहां अनेक देख पडे।फिर एकही रहगया । तो देखो ? रात और दिनके पाशे लुटा २ कर इस संसाररूपी चोपडमें प्राणियोंकी गोटी बनाकर कालपुरुष अपनी कालरात्रि शक्तिसे खेल रहाहै॥ १६७॥

कांश्चित्कल्पशतंकृतास्थितिचयान्कांश्चिद्युगानां
शतंकांश्चिद्वर्षशतंतथाकतिपयाञ्जतून्दिनानांश
तम् ॥ तांस्तान्कर्मभिरात्मनःप्रतिदिनंसंक्षीयमा
णायुषःकालोऽयंकवलीकरोतिसकलान्भ्रातःकुतः
कौशलम् ॥ १६८ ॥

टीका–कोई २ सौकल्पतक जीते हैं । कोई सौ युगतक जीते हैं । कोई सौ वर्षतक जीते हैं । कोई सौ दिनही जीते हैं प्रति दिन क्षय हो रहा है आयुष्य जिनकी । ऐसे उन सबको अपने २ कर्मोंके

अनुसार यह काल समय पाकर खा जाताहै । हे भाई ! कुशलता कहां है? ॥ १६८ ॥

कालेनाक्षितिवारिवह्निपवनव्योमादियुक्तंजगद्ब्रह्मा
द्याश्चसुराःप्रयान्तिविलयंविज्ञोविचारादिति ॥
पश्यामोऽपिविनश्यतोऽनवरतंलोकाननेकान्मुधा
मायामोहमयींभवत्प्रणयिनींनास्थांजहीमोवयम् १६९

टीका—यदि बिचार करके देखते हैं । तो यही निश्चय होता है । कि भूमि जल अग्नि बायु आकाशादि युक्त यह जगत् और ब्रह्मा-आदि सकल देवता काल पाकर नाश हो जावेंगे । और प्रति दिन अनेको लोगोंको मरतेहुए देखते भी हैं । तो भी मोहरूपी गहन मायाको हम लोग नहीं छोडते ॥ १६९ ॥

व्योमैकान्तविहारिणोऽपिविहगाःसंप्राप्नुवन्त्यापदं
बध्यन्तेनिपुणैरगाधसलिलान्मत्स्याःसमुद्रादपि॥
दुर्नीतंकिमिहाऽस्तिकिंसुचरितंकःस्थानलाभेगुणः
कालोहिव्यसनप्रसारितकरोगृह्णातिदूरादपि १७०॥

टीका—एकान्त आकाशमें विचरनेवाले पक्षीभी पकडे जाते हैं । और गंभीर समुद्रसेभी लोग मच्छोंको पकडलेते हैं । तो यहां दुर्नीत और सुचरित क्या है? और बडे स्थानके लाभ होजानेपरभी क्या गुण है? क्योंकि काल तो हाथ पसारकर दूरसेभी खींच लेताहै॥ १७० ॥

मान्धातासमहीपतिःक्षितितलेऽलंकारभूतोगतः
सेतुर्येनमहोदधौविरचितःक्वाऽसौदशास्याऽन्तकः॥
अन्येचाऽपियुधिष्ठिरप्रभृतयोयावन्तएवाभवन्नैके
नाऽपिसमंगतावसुमतीमुञ्चत्वयायास्यति ॥१७१॥

टीका-इस पृथ्वीका आभूषणरूप राजा मान्धाताभी चला गया जिन्होंने समुद्रमें पुल बांधी । और रावणको मारा । वेभी कहाँ रहे और भी युधिष्ठिर आदि बडे २ राजा हो गये । परन्तु यह पृथ्वी किसीके साधन गई । तो तेरे साथ क्यों कर जावेगी? ॥ १७१ ॥

पश्चात्तापः ।

भोगानभुक्तावयमेवभुक्तास्तपोनतप्तंवयमेवतप्ताः॥
कालोनयातोवयमेवयातास्तृष्णानजीर्णावयमेव
जीर्णाः ॥ १७२ ॥

टीका-विषयोंको हमने नहीं भोगे । किन्तु विषयोंहीनें हमारा भुगतान कर दिया । हमने तप नहीं तपे । परन्तु तपहीने हमको तपाडाले । काल व्यतीत नहीं हुआ । और आयु हमारी बीत गई । हम पुराने हो गये । परन्तु तृष्णा पुरानी नहीं हुई ॥१७२॥

जन्मैवव्यर्थतांनीतंभवभोगप्रलोभिना ॥
काचमूल्येनविक्रीतोहन्तचिन्तामणिर्मया ॥ १७३॥

टीका-हमने संसारके भोगोंकी इच्छासे इस जन्मको व्यर्थही खो डाला । हाय ! हाय ! चिन्तामाणि रत्नको काँचके दामपर बेच डाला ॥ १७३ ॥

यातंयौवनमधुनावनमधुनाशरणमेकमस्माकम् ॥
स्फुरदुरुहारमणीनांहारमणीनांगतःकालः ॥१७४॥

टीका-यौवनअवस्था व्यतीत हुई । स्फुरण होतेहुये हारोंसे शोभायमान सुन्दर स्त्रियोंकेभी दिन गये । अर्थात् वे भी अब अ-प्रिय प्रतीति होतीं हैं ॥ अब हमको तो शरण देनेवाला केवल बनही है ॥ १७४ ॥

पुनःप्रभातंपुनरेवशर्वरीपुनःशशांकःपुनरुद्यतेरविः ॥ कालस्यकिंगच्छतियातियौवनंतथाऽपि लोकःकथितंनबुध्यते ॥ १७५ ॥

टीका—फिर प्रभात होता है । फिर रात्रि होती है । फिर चन्द्रोदय होता है । फिर सूर्य उदय होता है । यहां कालका तो क्या बिगडता है? परन्तु यौवन तो दिन २ बीता जाताहै । तो भी लोग किसीका कहा सुना नहीं मानते ॥ १७५ ॥

नचाराधिराधाधवोमाधवोवानवापूजिपुष्पादिभिश्चन्द्रचूडः ॥ परेषांधनेधन्धनेनीतकालोदयालोयमालोकनेकःप्रकारः ॥ १७६ ॥

टीका—राधापति माधवका आराधन नहीं किया । पुष्पादिसे शिवजीका पूजन नहीं किया । दूसरोंका धन हरण करनेकी इच्छाहीमें दिन बिताये । अब हमारी यमपुरीमें क्या दशा होगी? ॥ १७६ ॥

चिरंध्यातारामाक्षणमपिनरामप्रतिकृतिःपरंपीतंरामाऽधरमधुनरामांघ्रिसलिलम् ॥ नतारुष्टारामायदरचिनरामाथविनतिर्गतंमेजन्माग्र्यंनदशरथजन्मापरिगतः ॥ १७७ ॥

टीका—सदा स्त्रियोंहीका ध्यान किया । परन्तु क्षणभरभी ईश्वरकी मूर्तिका ध्यान नहीं किया? सदा स्त्रीके मुखकी लार पान किया परन्तु कभी मन्दिरजाकर चरणामृत नहीं लिया? जब स्त्री मेरेपर क्रोधित हुई तब उसीको तो जाकर हाथ जोडे । परन्तु सर्व शक्तिमान्को नमस्कार नहीं किया? ऐसे करते २ यह जन्मही बीत गया परन्तु ईश्वरको नहीं पहिचाना? ॥ १७७ ॥

अजानन्माहात्म्यंपततुशलभोदीपदहनेसमीनोऽप्यज्ञानाद्वडिशयुतमश्नातुपिशितम् ॥ विजानन्तोऽप्येतेवयमिहविपज्जालजटिलान्नमुंचामःकामानहहगहनोमोहमहिमा ॥ १७८ ॥

टीका-पतंग दीपककी अग्निमें आय गिरताहै । परन्तु यह नहीं जानता । कि मैं नष्ट होऊंगा ॥ मछली जो कंटियाका मांस निगल जातीहै । वह भी नहीं जानती । कि इससे मेरे प्राण जावेंगे । पर हम लोगोंको देखिये कि जान बूझकर दुःखदाई विषयोंकी अभिलाष। नहीं छोडते । ओहो ! मोहकी महिमातो अत्यन्त कठिन है ॥ १७८ ॥

चित्तभूवित्तभूमत्तभूपालकोपासनावासनायासना नाभ्रमैः ॥ साधुतासाधुतासाधितासाधितांकित याचिन्तयाचिन्तयामःशिवम् ॥ १७९ ॥

टीका-काक और मदसे मतवाले होरहे । ऐसे राजाओंको प्रसन्न करनेकी इच्छाके नानाप्रकारके भ्रमोंसे सज्जनताको धो डाली । कष्टताका साधन किया । अब उस चिन्तासे क्या मिलने वालाहै ? हम तो शिवजीका ध्यान करेंगे ॥ १७९ ॥

नकाऽकारिकामारिकंसारिसेवानवास्वेष्टमाचेष्टितंहन्तकिंचित् ॥ मनःप्रेयसीरूपपंकेनिमग्नंकिमन्तेकृतान्तेमयावेदनीयम् ॥ १८० ॥

टीका-हरि वा शंकरका पूजन नहीं किया।अपने हितका कोई काम नहीं किया । मेरा मन तो सदा स्त्रीकी सुन्दरतारूप कीचडमें फँसा रहा । हाय! अन्तसमयमें मेरी क्या दशा होवेगी? ॥ १८० ॥

प्राप्ताःश्रियःसकलकामदुघास्ततःकिंदत्तंपदंशिरसि

विद्विषतांततः किम् ॥ सम्मानिताःप्रणयिनोविभवै-
स्ततःकिंकल्पंस्थितंतनुभृतांतनुभिस्ततःकिम् १८१

टीका—इन नाशवान् शरीर धारियोंने सब कामनाओंकी दुहने वाली लक्ष्मी पाई । तो क्या शत्रुओंके शिरपर पद दिया । तो क्या धनसे मित्रोंका सन्मान किया । तो क्या और इस देहसे कल्पभर जीये । तो क्या अर्थात् मनुष्य जन्म पाकर परलोक न बनाया । तो कुछभी नहीं किया ॥ १८१ ॥

जीर्णाएवमनोरथाःस्वहृदयेयातंजरांयौवनंहन्तां
गेषुगुणाश्चवंध्यफलतांयाताग़ुणज्ञैर्विना ॥ किं
युक्तंसहसाभ्युपैतिबलवान्कालःकृतान्तोऽक्षमी
ह्याज्ञातंस्मरनाशनांघ्रियुगलंमुक्त्वाऽस्तिनाऽन्या
गतिः ॥ १८१ ॥

टीका—सब मनोरथ हृदयहीमें पडे २ पुराने हो गये । कोई भी सिद्ध नहीं हुआ । युवा अवस्थाभी व्यतीत हुई । और गुणग्राहकों के बिना सब गुण निष्फल हो गये । और सर्व नाशक बलवान् काल सहसा कर निकट चला आता है । इससे अब यह जाना । क कामनाशक शिवजीके दोनोंचरणोंको छोड और कोई दूसरी गति नहीं ॥ १८१ ॥

धन्यानांगिरिकन्दरेनिवसतांज्योतिःपरंध्यायता
मानन्दाऽश्रुजलंपिबन्तिशकुनानिःशंकमंकेशयाः॥
अस्माकंतुमनोरथोपरचितप्रासादवापीतटक्रीडा
काननकेलिकौतुकजुषामायुःपरिक्षीयते ॥ १८२ ॥

टीका-जो उत्तम पुरुष पर्वतकी कंदरामें रहते हैं। और परब्रह्मकी ज्योतिका ध्यान करते हैं। जिनके आनंदका आसूँ पक्षीलोग निडरहो गोदमें बैठकर पीते हैं। उनको धन्य है और हम लोगोंकी तो अवस्था केवल मनोरथहीके मन्दिरकी बावडीके तटमें जो क्रीडावन तिसमें लीलाके कौतुक करतेही क्षीण होती है। अर्थात् नानाप्रकारकी मिथ्या कल्पनाओंहीमें जन्म व्यतीत होता है। वास्तवमें कोई मनोरथ सिद्ध नहीं होता ॥ १८२ ॥

नाभ्यस्ताभुविवादिवृन्ददमनीविद्याविनीतोचिता
खड्गाग्रैःकरिकुंभपीठदलनैर्नाकंननीतंयशः ॥
कान्ताकोमलपल्लवाऽधररसःपीतोनचंद्रोदयेतारु-
ण्यंगतमेवनिष्फलमहोशून्यालयेदीपवत् ॥ १८३॥

टीका-हमने नम्र जनोंकी प्रसन्नताके योग्य और वादियोंके समूहको दमन करनेवाली विद्याका अभ्यास नहीं किया। और तलवारकी धारसे हाथीके मस्तकका पृष्ठभाग उडाकर स्वर्गतक अपना यश नहीं पहुंचाया। अर्थात् कोई शूरवीरताका कामभी नहीं किया॥ और चांदनीरातमें सुन्दर स्त्रीके कोमल अधर पल्लवका रसभी पान नहीं किया। इस भूमिपर हमारी यौवनअवस्था तो यों बीतगई। जैसे शून्य घरमें दीपक जलकर आपही ठंडा होजाताहै ॥ १८३ ॥

क्षान्तंनक्षमयागृहोचितसुखंत्यक्तंनसंतोषतःसोढा
दुःसहशीतवाततपनाःक्लेशान्नतप्तंतपः ॥ ध्यातं
वित्तमहर्निशंनियमितप्राणैर्नशंभोःपदंतत्तत्कर्म
कृतंयदेवमुनिभिस्तैस्तैःफलैर्वञ्चितम् ॥ १८४॥

टीका-क्षमा तो हमने की। परंतु धर्म बिचारके नहीं की। अर्थात् किसी प्रबलसे काम पडा। तो क्षमाही करनी पडी ॥ गृह सुख

तो छोडा । परन्तु संतोष पकडकर नहीं छोडा ॥ शीतोष्ण वायुका दुःसह दुःख सहा । परन्तु तप न किया । धनहीका सदा ध्यान करते रहे । परन्तु संयमसे कल्याणदाता शिवजीके चरण नहीं ध्याये । जिनको मुनि लोगोंने बंचक ठग कहे हैं । हमने तो सदा वेही कर्म किये ॥ १८४ ॥

नध्यातंपदमीश्वरस्यविधिवत्संसारविच्छित्तये स्वर्गद्वारकपाटपाटनपटुर्धर्मोऽपिनोपार्जितः॥ नारीपीनपयोधरोरुयुगुलंस्वप्नेऽपिनालिंगितंमातुः केवलमेवयौवनवनच्छेदेकुठारावयम् ॥ १८५ ॥

टीका—संसारके छेदनकेलिये ईश्वरके चरणकमलोंका विधिवत् ध्यान नहीं किया । स्वर्गद्वार खुलनेकेलिये कोई निपुण धर्मभी नहीं किया । नारीके पुष्ट स्तन और दोनों जंघाका स्वप्नमेंकी आलिंगन नहीं किया । हमतो माताके यौवनरूपी बनके काटनेके लिये कुल्हाडेही उत्पन्न हुए ॥ १८५ ॥

मंत्रोद्भावितदैवतैर्नविधिवद्दासीकृताःसिद्धयोयोगाभ्याससमाहितैरनुदिनंतीर्णोनमोहार्णवः ॥ क्षुभ्यत्क्षुद्रनरेन्द्रदत्तविगलत्संपल्लवोल्लासितैर्धिङ्मूढैरिवपंडितैरपिबलात्कालःकथंनीयते ॥ २८६ ॥

टीका—देवताओंको प्रसन्न करके सिद्धियोंको दासी नहीं बनाई । योगाभ्याससे मोहरूप सागरको नहीं उल्लंघन किया । क्षोभको प्राप्त होकर जो राजाओंने कुछ थोडीसी नाशवान् वृत्ति निकालदी । उसीमें प्रसन्नहोकर जो पंडीत होनेपरभी मुर्खोंकी भाँति दिन व्यर्थ गवाते रहें ॥ उनको धिक्कार है ॥ १८६ ॥

धावित्वासुसमाहितेनमनसादूराच्छिरोनामितंभू-
पानांप्रतिशब्दकैरिवचिरंप्रोद्घुष्टमिष्टंवचः ॥ द्वारा
ध्यक्षनियंत्रणापरिभवप्रम्लानवक्त्रैःस्थितंभ्रातः
किंकरवाममुंचतिमनोनाद्याप्यविद्याग्रहम् ॥१८७॥

टीका—पहिलेहीसे मनमें भलीभांति समझकर गये । और दूर-हीसे शिर झुकाया ॥ राजाओंकी वाणीके साथ २ बहुतदिनतक मिठी बाणीसे हां में हां मिलाई । तो भी एक दिन द्वारपालोंकी झिडकीसे छोटासा मुँह करके खडे रहना पडा ॥ हे भाई? क्या करे? तो भी अभीतक हमारा मन मूर्खताके घरको नहीं छोडता ॥१८७॥

विद्यानाधिगताकलंकरहितावित्तंचनोपार्जितंशु-
श्रूषाऽपिसमाहितेनमनसापित्रोर्नसंपादिता॥ आ-
लोलायतलोचनायुवतयःस्वप्नेऽपिनालिंगिताः
कालोऽयंपरपिंडलोलुपतयाकाकैरिवप्रेरितः १८८॥

टीका—निष्कलंक विद्या नहीं पढी । धन उपार्जन नहीं किया ॥ एकाग्र चित्त होकर माता पिताकी सेवाभी नहीं की । और चंचल और बडे नेत्रवाली स्त्रियोंको स्वप्नेमें भी गलेसें न लगाई ॥ पराये ग्रासकी आशा करते२काककी भांति सब समय योंही बिताया॥१८८॥

नोधर्मायततोनतत्रनिरतानार्थाययेनेदृशाःका-
मोऽप्यर्थवतांतदर्थमपिनोमोक्षःक्वचित्कस्यचि-
त् ॥ तत्केनामवयंवृथैवघटिताज्ञातंपुनःकारणम्
जीवन्तोऽपिमृताइतिप्रवदतांशब्दार्थसंसिद्धये१८९।

टीका—जो काम हम आजकल कर रहे हैं । इससे न तो कोई धर्म है । और न कोई ऐसा अर्थसाधन होताहै । जैसा चहाते हैं वैसा

काम भी साधन नहीं होता ॥ और मोक्ष तो इससे कभी किसी भांतिसे होन हारही दृष्टीमें नहीं आता ॥ तो क्या हम वृथाही जी रहे हैं? वा "यह जीताहुआही मेरेके तुल्य है" इस वचनको सिद्ध कर रहे हैं ॥ १८९ ॥

ब्रह्मज्ञानविवेकिनोऽमलधियःकुर्वन्त्यहोदुष्करंय-
न्मुंचंत्युपभोगकांचनधनान्येकांततोनिस्पृहाः ॥
नप्राप्तानिपुरानसंप्रतिनचप्राप्तौदृढप्रत्ययोवांछा
मात्रपरिग्रहाण्यपिपरंत्यक्तुंनशक्तावयम् ॥ १९० ॥

टीका–ब्रह्मज्ञानके विवेकी निर्मल बुद्धिवान् और सत्पुरुष यह बडा कठिन व्रत धारण करते हैं ॥ कि उपभोग भूषण वस्त्र चंदन वनिता शय्या ताम्बूल और धन इत्यादि विषयके सामग्री सब त्याग देते हैं । और निरन्तर निस्पृह रहते हैं । हमको तो ये वस्तु न तो पहिले प्राप्त हुईथीं । और न अब प्राप्त हैं और न आगे प्राप्त होने का दृढ विश्वास है । ये सब इच्छामात्रसे ग्रहण हो रहे हैं ॥ उनकोभी हम परित्याग नहीं कर सकते । अर्थात् इनकी आशाकाभी हमसे परित्याग नहीं होता ॥ १९० ॥

दन्तैःप्रस्थितमग्रतस्तदनुभोःशौक्ल्यंधृतंमूर्धजैः
कर्णाभ्यामपिवाग्विलासरचनाकष्टात्समाकर्ण्यते ॥
नेत्राभ्यामपिचापलंयुवतिषुत्यक्तंगतंयौवनं सार्थे
ऽस्मिश्चलितेकथं पुनरहंयाताऽस्मितच्चिन्तये १९१॥

टीका–दांत भगगये । उनके साथ २ बालोंने भी धवल वर्ण धारण किया । साथ २ कानोंने भी सुनने में अपनी कष्टता प्रगट की, नेत्रोंने भी दौड २ कर स्त्रियोंकी और देखना छोडा । जब सबने अपने२अर्थको छोडा । तो फिर मैं क्यों उनकी चिन्ता कररहाहूं॥१९१॥

रात्रिःसैवपुनःसएवदिवसोमत्वाबुधाजन्तवोधाव-
न्त्युद्यमिनस्तथैवनिभृतप्रारब्धतत्तत्क्रियाः ॥
व्यापारैःपुनरुक्तभुक्तविषयैरेवंविधेनामुनासंसा-
रेणकदर्थिताःकथमहोमोहान्नलज्जामहे ॥ १९२ ॥

टीका–वही रात और दिन नित्य होते हैं । यह जानकर भी बुद्धिमान् मनुष्य उद्योग करते हुए उसी प्रति दिनकी रीतिसे यथार्थ तिस २ कर्मका प्रारंभ करके वारंवार कहे और भोगे हुए हैं विषय जिन मैं ऐसे २ व्यापारोंसे जहां तहां दौडते हैं । इस पूर्वोक्त प्रकारके इस संसारसे निन्दित अर्थवालेभी हम मोहसे लज्जाको प्राप्त नहीं होते ॥ १९२ ॥

देशेदेशेदुराशाकवलितहृदयोनिष्कृपाणांनृपाणां
धावंधावंपुरस्तादतिकुमतिरहंजन्मसंपादयामि ॥
आधायाधायराधाधवतवचरणांभोजमन्तःसमाधा
वन्येऽरण्येऽतिपुण्येपुलकितवपुषोवासरान्वाहयन्ति।

टीका–हे ईश्वर! मैं मूर्ख तो दुराशाका मारा देशों२में निर्दयी राजाओंके आगे दौड२कर इस जन्मको गँवा रहाहूं । और कोई महात्मा समाधिमें वा और कोई वनमें बैठे तेरे चरण कमलका ध्यान करतेहुए आनन्दसे रोमांचित होकर दिन अतिक्रमण करतेहैं॥ १९३॥

क्षोणीपर्यटनंश्रमायविदुषांवादायविद्यार्जिता
मानध्वंसनहेतवेपरिचितास्तेतेधराधीश्वराः ॥
विश्लेषायसरोजसुन्दरदृशामास्येकृताहृष्टयः
कुज्ञानेनमयाप्रयागनगरेनाराधिनारायणः ॥१९४॥

टीका-मैंने केवल श्रम उठानेकेलिये अनेक देशोंमें भ्रमण किया। पंडितोंके साथ विवाद करनेके लिये विद्यापढी ॥ अपना मानभंग करवानेके लिये राजाओंसे जान पहिचान की। थूक खंखार और लार पीनेकेलिये स्त्रियोंकी ओर नेत्रोंको दुडाये ॥ ऐसे २ निन्दित काम-तो किये। परन्तु हाय! हाय! मुझ मूर्खने प्रयागमें जाकर नाराय-णका ध्यान नहीं किया? ॥ १९४ ॥

विचारः ।

धर्मंप्रसंगादपिनाचरन्ति
पापंप्रयत्नेनसमाचरन्ति ॥
आश्चर्यमेतद्धिमनुष्यलोके
ऽमृतंपरित्यज्यविषंपिबन्ति ॥ १९५ ॥

टीका-प्रसंग रहनेपरभी धर्मका आचरण नहीं करते ॥ और कोई प्रसंग न रहने परभी पाप कर्मके लिये प्रयत्न करते हैं ॥ यह इस लोकमें बडा आश्चर्य है। कि अमृतको छोडकर विषपान करते हैं ॥ १९५ ॥

किंतेधनैर्बन्धुभिरेववाकिं
दारैश्चकिंब्राह्मणयोमरिष्यति ॥
आत्मानमन्विच्छगुहांप्रविष्टं
पितामहास्तेक्वगताःपिताच ॥ १९६ ॥

टीका-हे विप्र! इन धन भाई बंधु और स्त्री आदिसे क्या? कि जिनका एक दिन नाश होजावेगा ॥ तूतो अपने शरीररूपी गुहामें बैठी हुई आत्माको पहिचान ॥ क्योंकि तेरे बाप दादा और पुरखा कहां चले गये? ॥ १९६ ॥

जडास्तपोभिःशमयन्तिदेहं
बुधामनश्चापिविकारहेतुम् ॥
श्वासुक्तमस्त्रंदशतीतिकोपा
त्क्षेप्तारमुद्दिश्यहिनस्तिसिंहः ॥ १९७ ॥

टीका–मूर्ख तप आदिसे अपनी देह सुखाते हैं । और विद्वान् विकारोंका नाश होनेके लिये मनको सुखाते हैं । जैसे कुत्तेकी ओर लकडी करे । तो वह लकडीहीको मुँहमें पकडताहै । और सिंह उस लकडी को छोडकर उस लकडीके चलानेवालेको पकडताहै ॥ तात्पर्य यह है । कि इस देहसे नाना प्रकारके अधर्म करवानेमें हेतु मनही है ॥ इसीलिये मनहीको सुखाना चाहिये ॥ १९७ ॥

मुंडीजटीवल्कलवांस्त्रिदंडी
काषायवासाव्रतकार्शितांगः ॥
त्यक्तेहिकोवायदिनाततत्व
स्तदातुतस्योभयमेवनष्टम् ॥ १९८ ॥

टीका–मुंड मुंडवाय कर, वा जटा बढाकर, वा पत्ते छाल आदि पहिनकर, वा त्रिदंड धारण करके, वा गेरुआ कपडा पहिनकर वा नाना प्रकारके व्रतोंसे अपनी देहको दुबली करके, वा सब प्रकार की इच्छाओंको छोड करकेभी जिसने तत्व (ईश्वर) का चिन्तवन नहीं किया उसने यह लोक और परलोक दोनों गँवाये ॥ १९८ ॥

यस्मिन्वस्तुनिममतामयतापस्तत्रतत्रैव ॥
यत्रैवाहमुदासेतत्रमुदासेस्वभावसंतुष्टः ॥ १९९ ॥

टीका–जिस जिस वस्तुमें मैंने ममता बांधी ॥ उसी २ वस्तुसे

मुझको ताप हुआ ॥ जब मैं सब वस्तुओंसे उदासीन होता हूं ॥ तो स्वभावहीसे संतुष्ट होकर हर्षसे रहता हूं ॥ १९९ ॥

विवेकएवव्यसनंपुंसांक्षपयितुंक्षमः ॥
अपहर्त्तुंसमर्थोऽसौरविरेवनिशातमः ॥ २०० ॥

टीका—एक विवेक (ज्ञान) ही मनुष्योंका दुःख हर सकता है ॥ केवल सूर्यही रात्रिके अंधेरेको हटानेमें समर्थ है ॥ २०० ॥

स्वमस्तकसमारूढंमृत्युंपश्येज्जनोयदि ॥
आहारोऽपिनरोचेतकिमुतान्याविभूतयः ॥ २०१ ॥

टीका—यदि मनुष्यको ऐसा विदित होवे। कि मृत्यु मेरे मस्तकही पर बैठा हुआ है । तो आहारभी अच्छा न लगे ॥ और विभूति तो दूर रही ॥ २०१ ॥

आदरेणयथास्तौतिधनवन्तंधनेच्छया ॥
तथाचेद्विश्वकर्त्तारंकोनमुच्येतबन्धनात् ॥ २०२ ॥

टीका—जैसे धनकी इच्छा करके आदरपूर्वक धनवान्‌की स्तुति करताहै ॥ यदि वैसी स्तुति सर्व शक्तिमान्‌की करे । तो बंधनसे कौन नहीं छूटे? अर्थात् जन्म मरण रूप बंधन छूट जाय ॥ २०२ ॥

अधीत्यचतुरोवेदान्व्याकृत्याष्टादशस्मृतीः ॥
अहोश्रमस्यवैफल्यमात्माऽपिकलितोनचेत् ॥२०३

टीका—चारों वेद और अष्टादशस्मृति पढ करकेभी जिसने आत्माको नहीं पहिचानी ॥ उसका श्रम व्यर्थही हुआ ॥ २०३ ॥

मृत्योर्बिभेषिकिंमूढभीतंमुंचतिकिंयमः ॥
अजातंनैवगृह्णातिकुरुयत्नमजन्मनि ॥ २०४ ॥

टीका-अरे मूर्ख? मृत्युसे क्यों डरता है ? ॥ डरनेवालेको क्या मृत्यु छोडदेता है? । हां-जो नहीं जन्मता उसे मृत्युभी नहीं पकड ता । इस लिये ऐसा उपाय कर । जिससे फिर जन्म लेना न पडे॥ २०४॥

केचिद्वदन्तिधनहीनजनोजघन्यः
केचिद्वदन्तिगुणहीनजनोजघन्यः ॥
व्यासोवदत्यखिलवेदविशेषविज्ञो
नारायणस्मरणहीनजनोजघन्यः ॥ २०५ ॥

टीका-कोई धनहीन पुरुषको निन्दित कहते हैं ॥ कोई गुणहीन पुरुषको निन्दित बतलाते हैं ॥ परन्तु सकल वेदशास्त्रोंके जाननेवाले व्यासजीनेतो नारायणके स्मरणसे हीन पुरुषको निंदित कहाहै॥ २०५॥

भिक्षाशनंभवनमायतनैकदेशः
शय्याभुवःपरिजनोनिजदेहभारः ॥
वासश्चजीर्णपटखंडनिबद्धकंथा
हाहातथाऽपिविषयान्नजहातिचेतः ॥२०६॥

टीका-भिक्षा मांगकर खाताहै । चौडे चौगानहीमें रहताहै ॥ पृथ्वीही शय्याहै । अपनी देह मात्र कुटुंब है ॥ पुराने फटे टूटे कपडोंको जोडकर उनकी गोदडीही पहिनताहै । खेदका विषयहै । कि तो भी उसका चित्त विषयोंसे नहीं हटता ॥ अर्थात् इस दशाको प्राप्त होनेपरभी वह यही समझताहै । कि ये दुःख के दिन हैं । निकल जावेंगे । फिर सुख मिलेगा । इत्यादि आशा करताहै । परन्तु सुखकी इच्छाको नहीं छोडता ॥ २०६ ॥

केनाप्यनर्थरुचिनाकपटंप्रयुक्त
मेतत्सुहृत्तनयबन्धुमयंविचित्रम् ॥

कस्यात्रकःपरिजनःस्वजनोजनोवा
स्वप्नेन्द्रजालसदृशःखलुजीवलोकः ॥२०७॥

टीका-मित्र पुत्र बन्धुमय विचित्र कपट किसी अनर्थकी रुचिसे रचाहै । नहीं तो किसीका कौन कुटुम्बी है? और कौन अपना और पराया है? यह जीव लोक तो स्वप्न वा इन्द्रजालके तुल्यहै २०७

अग्रेगीतंसरसकवयःपार्श्वतोदाक्षिणात्याः
पृष्ठेलीलावशपरिणतिश्चामरग्राहिणीनाम् ॥
यद्यस्त्येवंकुरुभवरसास्वादनेलंपटत्वं
नोचेच्चेतःप्रविशसहसानिर्विकल्पेसमाधौ ।२०८।

टीका-सन्मुख प्रवीण गवई ये गाते हों । दाहिने बाए दक्षिण देशके सरस कवि लोग काव्य सुनाते हों ॥ और पीछे चंवर डोलानेवाली सुन्दर स्त्रियोंके कंकणकी मधुर झनकार होती हो । जो ऐसी सामग्री तुझे प्राप्त हो । तो संसारके रसका स्वाद लेनेमें लिपट । नहीं तो हे चित्त स्थिर समाधिमें प्रवेश कर ॥ २०८ ॥

परिच्छेदातीतःसकलवचनानामविषयः
पुनर्जन्मन्यस्मिन्ननुभवपथंयोनगतवान् ॥
विवेकप्रध्वंसादुपचितमहामोहगहनो
विकारःकोऽप्यन्तर्जडयतिचतापंचकुरुते २०९

टीका-परिच्छेदसे अतीत सकल वचनोंका अविषय ऐसे ईश्वररूप कल्याणके मार्गको जिसने इस लोकमें नहीं पकडा ॥ उसके हृदयकी ज्ञानके नाश हो जानेसे महा मोहरूप विकार जड बनाता है ॥ और ताप उत्पन्न करता है ॥ २०९ ॥

६

स्थिरापायःकायःप्रणयिषुसुखंस्थैर्यविमुखं
महाभोगारोगाःकुवलयदृशःसर्पसदृशाः ॥
महावेशःक्लेशःप्रकृतिचपलाश्रीरपिखलां
यमस्वैरीवैरीतदपिनहितंकर्मविहितम्॥२१०॥

टीका–यह शरीर स्थिर नहीं । प्यारोंका सुख भी स्थिर नहीं ॥ भोग रोगके दाता हैं । स्त्रियां सर्प तुल्यहैं । प्रत्येक वस्तुमें रतहोना क्लेशका दाताहै ॥ लक्ष्मी भी चपल है । और यम स्वेच्छाचारी और वैरी है ॥ तथापि लोग उचित कर्म नहीं करते । कि जिससे अपना हितहो ॥ २१० ॥

यदापूर्वंनासीदुपरिचतथानैवभविता
तदामध्यावस्थाक्षणपरिचयोभूतनिचयः ॥
अतःसंयोगेऽस्मिन्परिणतिवियोगेचसहजे
किमाधारःप्रेमाकिमधिकरणाःसन्तुचशुचः२११

टीका–इस जगत्के पहिले अर्थात् सृष्टीके प्रारंभके पूर्व कुछ नहीं था ॥ और प्रलयके पश्चात् भी कुछ नहीं रहेगा ॥ फिर यह जो बीचमें संयोग होकर प्राणियोंका परस्पर परिचय होगया है । और अन्तमें वियोग होनेवाला है । इसमें क्या आधार है ? क्या प्रेम और अधिकरण है? ऐसी असत्य संसारसे सबको शोक होवे॥ अर्थात् यह संसार किसीको सत्य प्रतीति मतहो ॥ २११ ॥

शुचांपात्रंधात्रीपरिणतिरमेध्यप्रचयभू
रयंभूतावासोविमृशकियतींयातिनदशाम् ॥

तदस्मिन्धीराणांक्षणमपिकिमास्थातुमुचितं
खलीकारःकोऽयंयदहमहमेवेतिरभसः ॥२१२॥

टीका—यह देह शोकका पात्र अपवित्र मल मूत्रादिका निधि [खान]और कैसी कैसी दशाको प्राप्त होताहै । सो क्या नहीं जानते हो?॥इसी लिये यदि सत्य विचारा जावे । तो यह देह ऐसी अपवित्रहै । कि क्षणभरभी इसमें धीर पुरुष स्थित नहीं रहसकते ॥ तो भी यह क्या मूर्खता है? कि इस देहको मैं-मैं-मैं कहकर बडे हर्षित होते हैं ॥ २१२ ॥

विशीर्णःप्रारंभोवपुरपिजराव्याधिविधुरं
गतंदूरेविप्रस्वजनभरणंवांछितमपि ॥
इदानींव्यामोहादहहविपरीतेहतविधौ
विधेयंयत्तत्त्वंस्फुरतिममनाद्याऽपिहृदये २१३॥

टीका—प्रारंभ जीर्ण हुआ ॥ शरीर भी जरा व्याधि आदिसे ग्रस्तहै । ब्राह्मण और अपने जनोंका पालन करूंगा । यह इच्छाभी सिद्ध नहीं हुई । ओहो अभीतक विधाता क्या उलटाहो रहाहै । कि जो तत्त्व मुझको विचारनेका है । उसकी स्मृतिभी मेरे हृदयमें नहीं है ॥ २१३ ॥

नाथेश्रीपुरुषोत्तमेत्रिजगतामेकाधिपेचेतसा
सेव्येस्वस्यपदस्यदातरिसुरेनारायणेतिष्ठति ॥
यंकंचित्पुरुषाधमंकतिपयग्रामेशमल्पार्थदं
सेवायैमृगयामहेनरमहोमूढावराकावयम् ॥२१४॥

टीका—नाथ श्रीपुरुषोत्तम तीनों जगत्के अधिपति चित्तसे सेवन करनेके योग्य अपने पदको देनेवाले ऐसे श्रीनारायणके रहतेभी

हमलोग किसी अधम पुरुष और थोडेसे गांवोंके ठाकुर और थोडा-सा द्रव्य देनेवालेको नौकरीके लिये ढूंढ रहे हैं । ओहो हमतो बडे मूर्ख हैं ॥ २१४ ॥

बीभत्साःप्रतिभान्तिकिंनविषयाःकिन्तुस्पृहा
युष्मतीदेहस्यापचयोमृतौनिविशतेगाढोगृहेषु
ग्रहः ।ब्रह्मोपास्यमितिस्फुरत्यपिहृदिव्यावर्तिका
वासनाकानामेयमतर्क्यहेतुगहनादैवासितांयातना २१६

टीका–हे विषयो क्या तुम भयके दाता नहीं हो? यदिहो तो तुम्हारी हमको इतनी इच्छा क्यों बनी रहती है? और मृत्यूमें प्रवेश करने पर देहका भी नाश होजायगा॥तो फिर घरमें इतना मोह क्यों है? ॥ ब्रह्मकी उपासना करनी चाहिये । यह विदित होनेपर भी सज्जनोंको विषयोंकी कठिन वासना क्यों बनी रहती है? ॥२१५ ॥

क्लेशत्यागकृतेऽर्पितेनकरणव्यूहेनदेहेनच
स्वानर्थंवतजन्तुरर्जयतिचेन्मन्तुर्नियन्तुःकुतः॥
शस्त्रेशत्रुजयायनैजगुरुणादत्तेऽथतेनैवचे
त्पुत्रोहन्तिनिजंवपुःकथयरेतत्रापराधीतुकः २१

टीका–जिस देहको भगवद्भक्तिमें लगानेसे सब क्लेशोंका नाश हो जाय । उसी देहसे लोग जब नानाप्रकारके पाप करे । तो वहां उस देहके देनेवाले ईश्वरका क्या अपराधहै? ॥ पिता अपने पुत्रको शत्रुओंके जीतनेके लिये शस्त्र देवे । और उसी शस्त्रसे यदि पुत्र अपनाही शरीर काट डाले । तो वहां पिताका क्या अपराधहै?२१६

मानेम्लायिनिखंडितेचवसुनिव्यर्थंप्रयातेऽर्थिनि
क्षीणेबंधुजनेगतेपरिजनेनष्टेशनैर्यौवने ॥

युक्तंकेवलमेतदेवसुधियांयज्जन्हुकन्यापयः
पूतग्रावगिरीन्द्रकन्दरदरीकुंजेनिवासःक्वचित् २१७

टीका—जब प्रतिष्ठा भंग हुई । द्रव्य नाश हो गया ॥ याचक लोग आय आय कर और विमुख फिर जाने लगे । भ्राता स्त्री पुत्र और संबंधी वा यौवन आदि नष्ट हो गये । उस समय बुद्धिमान् पुरुषोंको उचित है, कि जिस पर्वतके पाषाण गंगाजलसे पवित्र हैं । उसकी कंदराके समीप दरी और कुंजमें कहां निवास करे ॥२१७॥

दिवसरजनीकूलच्छेदैःपतद्भिरनारतं
वहतिनिकटेकालस्रोतःसमस्तभयावहम् ॥
इहहिपततांनास्यालंबोनचापिनिवर्त्तनं
तदिहमहतांकोऽयंमोहोयदेषमदाविलः ॥२१८॥

टीका—दिन और रात्रिरूपी जिसमें तट हैं । और पडनेवालोंको निरन्तर बहानेवाला सम्पूर्ण भयोंका दाता ऐसा यह काल रूप स्रोता निकट बह रहाहै । इसमें पडने वालोंको पकडनेके लिये कोई आश्रय नहीं है । और इसमें पडकर कोई पीछा नहीं निकला ॥ तो फिर यह बडे आदमियोंको क्या मोह छा रहा है? कि जिससे सदा अभिमानीही बने रहते हैं ॥ २१८ ॥

विवेकःकिंसोऽपिस्वरसजनितायत्रनकृपा
सकिंयोगोयस्मिन्नभवतिपरानुग्रहरसः ॥
सकिंधर्मोयत्रस्फुरतिनपरद्रोहविरतिः
श्रुतंकितद्वास्यादुपशमफलंयन्नभवति ॥२१९॥

टीका—वह विवेक क्या? कि जिसके होनेसे हृदयमें कृपा उत्पन्न न होवे । वह योगही क्या? जिसमें दूसरोंपरअनुग्रह करना—यह रस

प्रगट न होवे । वह धर्मही क्या? कि जिससे दूसरोंसे शत्रुता न छूटे ॥ वह ज्ञानही क्या? जिससे शान्ति फल प्राप्त न होवे ॥ २१९ ॥

रेतःशोणितयोरियंपरिणतिर्यद्वर्ष्मतत्राभवन्मृ
त्योरास्पदमाश्रयोगुरुशुचांरोगस्यविश्रामभूः॥
जानन्नप्यवशीविवेकविरहान्मज्जन्नविद्याम्बुधौ
शृंगारीयतिपुत्रकाम्यतिवतक्षेत्रीयतिस्त्रीयति२२०

टीका–पहिले तो यह शरीर रज और बीर्यसे बना हुआहै ॥ और इतना होनेपर भी मृत्युका घरहै । और नाना प्रकारके शोकोंको आश्रय देनेवाला है । और फिर रोगोंका तो बिश्राम लेनेके लिये मानो स्थानही बना हुआहै । इतना जानते पर भी अज्ञान होनेके कारण अविद्यारूप समुद्रमें डुबता हुआ इस शरीरका शृंगार करता है । किसी शरीरको पुत्र मानता है ॥ देह मानताहै । और किसी शरीरको स्त्रीमानता है ॥ २२० ॥

इन्द्रस्याशुचिशूकरस्यचसुखेदुःखेचना
स्त्यंतरंस्वेच्छाकल्पनयातयोःखलुसु
धा विष्टाचकाम्याशनं॥रम्याचाशुचिशू
करीचपरमप्रेमास्पदंमृत्युतःसंत्रासो
ऽपिसमःस्वकर्मगतिभिश्चान्योन्यभावःसमः॥२२१॥

टीका–इन्द्र और ग्रामशूकर (गडसूरा)की सुख और दुःखमें कुछ अन्तर नहीं है । अपनी इच्छा हीसे कल्पित करके वह अमृतको बडा समझता है ॥ और वह विष्टाको बडी समझता है । वह अप्सराओंको प्यारी मानताहै । और वह ग्राम शूकरियों (गडसूरियों) को प्यारी मानताहै । मृत्यु आनेपर त्रासभी दोनोंको तुल्यही होताहै । अपने २ कर्मों करके अन्योन्य भाव तुल्यहै । अर्थात् यदि

ईश्वर स्मरण नहीं किया । और मोक्ष साधन नहीं किया । तो भोजन स्त्री आदि सुखतो इन्द्रको और ग्राम शूकरको तुल्यहै । तात्पर्य यह है । किं जो विषयोंसे चित्तको हटाकर मोक्षसाधन करे । वही सबसे अधिक और धन्य है? ॥ २२१ ॥

अहौवाहारेवाबलवतिरिपौवासुहृदिवाम
णौवालोष्टेवाकुसुमशयनेवादृषदिवा ॥
तृणेवास्त्रैणेवाममसमदृशोयान्तिदिवसाः
क्वचित्पुण्यारण्येशिवशिवशिवेतिप्रलपतः॥२२२॥

टीका–सर्प वा हार, बलवान् शत्रु वा मित्र, मणि वा पाषाण, पुष्प रचित शय्या वा पत्थरकी चट्टान, तृण वा स्त्रियोंके समूहमें समदर्शी होकर पवित्र बनमें शिव ३ जपते हमारे दिन कहीं व्यतीत होवें ॥ हम तो यही चहाते हैं ॥ २२२ ॥

इति "ग्राम जालिया परगना मसूदा जिल्ला अजमेर"
इत्याख्ये निवसता पण्डितहरदेवशर्मणा संगृ
हीतं तेनैवकृतभाषाटीकया समेतं
चेदम् शृंगारादिनवरसनिरूपणम्
समाप्तम् शुभम् ।

पुस्तक मिलनेका ठिकाना–

खेमराज श्रीकृष्णदास

"श्रीवेंकटेश्वर" छापाखाना–बम्बई.